मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं

(व्यंग्य)

ज्ञान भारती
४/१४ रूपनगर दिल्ली ११०००७

मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनायें

श्रीलाल शुक्ल



ज्ञान भारती
४/१४ रूपनगर
दिल्ली ११०००७
द्वारा प्रकाशित

श्री श्रीलाल शुक्ल • मूल्य २५ ००

द्वितीय संस्करण
१९८९

सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस
ए ९५ सेक्टर ५
नोएडा २०१३०१ में मुद्रित।
[228.2-06-589/G]

MERI SHRESHTHA VYANGYA RACHANAYEN (Satire)
by Shrilal Shukla

परिचय

१

१९७० में साहित्य अकादमी का पुरस्कार पाने के उपलक्ष्य में अकादमी की पत्रिका 'इडियन लिट्रेचर' ने मुझसे माग की कि मैं साहित्यिक [illegible] और विचारो के सबध में एक टिप्पणी दू। 'मेरी श्रेष्ठ [illegible]' सीरीज का लेखक होने के नाते मुझसे लगभग [illegible] प्रकाशको की ओर से की गयी है। इस बार [illegible] के सबध में अपने विचारों को लिपिबद्ध कर।

'इडियन लिट्रेचर' को मैंने जो टिप्पणी [illegible] कुछ उद्धरणो का भावानुवाद मैं यहां [illegible] व्यक्ति जीवनी के कुछ तथ्य तो [illegible] और विचारो के बारे म मैंने [illegible] जिन कारणो से ऐसा हुआ है [illegible] मे भी मैं वही नीति [illegible]

ढग से शब्दबद्ध कर सकता है। (यह दूसरी बात है कि हिन्दी के अधिकांश कवि और कथाकार अच्छी व्यापारिक टिप्पणियां लिख सकते हैं और लिखते है, और यही नहीं, उनमें से बहुत से औसत से ऊंचे दर्जे के वक्ता भी हैं।) एक ही व्यक्ति का एक साथ सृजनात्मक लेखक, मनीषी (इंटेलेक्चुअल) और विद्वान (अकेडेमीशियन) होना लाजमी नहीं और कम से कम मैं इन तीनों हैसियतों का मिश्रण नहीं ही हूं। इसलिए सिर्फ व्यंग्य कथाएं या राग दरबारी लिख सकने के कारण मैं व्यंग्य पर कोई शास्त्रीय व्याख्या देने की अपने में क्षमता नहीं देखता। दूसरा कारण कुछ ज्यादा व्यावहारिक है। सृजनात्मक लेखक होने का एक बड़ा फायदा यह है कि लेखक अपनी मान्यताओं और विचारों की स्वयं व्याख्या न करके दूसरों से साफ उम्मीद कर सकता है कि वे ही उसके लेखन में अंतर्निहित विचारों की खोज करें। यानी खुद तली हुई मछलियां को स्वादपूर्वक चखते हुए वह पाठकों और आलोचकों को अपनी बंसी के साथ उस नदी में मछली फंसाने के लिए भेज सकता है जिसमें लाजमी नहीं कि मछलियां हों ही। अपनी मान्यताओं को वैचारिक स्तर पर स्पष्ट करने या उनकी व्याख्या देने में और भी खतरे है। इससे आप पाठकों और आलोचकों के हाथ में एक ऐसा हथियार पकड़ा देते हैं जिसे वे जब चाहें उस आपकी रचनाओं की गर्दन पर चला सकते हैं। ऐसी दशा में जरा सा प्रोत्साहन या ढील पाते ही अपने विचारों की बियर बोतल से फेना बहाने वाले बहुत से दूसरे सहकर्मी लेखकों के प्रति मेरी शुभकामनाएं पर हलाल होने के लिए परम भद्रता के साथ आगे बढ़ने वाले मेमने की भूमिका में मेरी दिलचस्पी नहीं है।

एक कारण और भी, जो मेरे लिए सर्वाधिक महत्त्व का है। विचारों का एक बहुत बड़ा इलाका है जिसमें लेखक की हैसियत से यहां तक कि नागरिक की हैसियत तक से मैं आज तक अपनी मान्यताओं को अपने लिए भी परिभाषित नहीं कर पाया हूं। वहां तोड़ फोड़ और पुनर्निर्माण की एक आंतरिक प्रक्रिया अनवरत रूप चल रही है जिसे दूसरों के आगे पेश करने की हिम्मत जुटाना मेरे

लिए मुश्किल है।

इसलिए असमथता, विवेक और लोक-चातुय—सभी दृष्टियो स लेखकीय अधिकार का झडा उठाकर यह वक्तव्य देना मुझे ज्यादा अच्छा लगता है कि "मुझे जो कहना था वह मैंने अपनी रचनाओ मे कह दिया है। उसके अलावा मुझे कुछ नही कहना है।'

२

पर परिचय के तौर पर अपनी साहित्यिक यात्रा के बारे मे मुझे कुछ कहना है।

नियमित लेखन की शृखला मे मेरा पहला व्यग्य-लेख 'स्वणग्राम और वर्षा है जो अगद का पाव में सगृहीत है। एक जमाना था—और अब भी है—जब आल इडिया रेडियो के प्रोडयूसरगण वर्षा, शरद, बसत जैसी ऋतुओ के प्रसग मे रोमाटिक सुबुक सुबुकवाद के फ्लडगेट खोल देते थे—और अब भी खोल देत ह। ग्राम्यजीवन की कठिनाइयों और निमम परिस्थितिया से उनका कोई सरोकार नही, उनके लिए मौसम का हर बदलाव 'होली है! होली है!' या 'बिरहिन नीर बहावे का मौका पेश करता है। अपने साहित्यिक बचपन मे भी यथाथ का ऐसा तिरस्कार और रोमाटिक जडता की ऐसी अधोपासना मुझे सिफ खिझा देती है। स्वणग्राम और वर्षा' रेडियो पर आने वाले एक ऐसे ही सगीत रूपक के खिलाफ निकली हुई प्रतिक्रिया थी और चूकि वह प्रतिक्रिया आज मुझे उतनी श्रेष्ठ नही लगती इसलिए इस सग्रह मे आने से छूट गई है।

'इडियन लिटरेचर' को १९७० मे मैंने जो टिप्पणी भेजी थी उसका एक प्रासगिक अश इस प्रकार है

> "अगर किशोरावस्था मे किये गए घपलो को न गिनें तो साहित्य मे मेरे प्रयोग २७ वष की अपेक्षाकृत परिपक्व आयु मे शुरू हुए। (सिविल सर्वेंट की हैसियत स मेरा कैरियर और भी पहले शुरू हो गया था।)

" यह १६५३ ५४ की बात है। उस समय मैं, जिसे पिछड़ेपन मे बुंदेलखंड के सबसे विकट इलाकों में गिना जाता था, यानी राठ के एक दूरस्थ डाक बंगले में अस्थायी तौर से रहता था, और वहाँ मेरे सुख के साधनो में कुल मिलाकर एक बैटरी वाला रेडियो, एक बंदूक और दो राइफलें, एक खटारा ऑस्टिन, मुट्ठी भर किताबें (ज्यादातर रिप्रिंट सोसाइटी के प्रकाशन) कभी-कभी आने वाली पत्रिकाएं, बिना शिकवा शिकायत वाली बीवी और दो बहुत छोटी बच्चियां थीं जो बोल फूटते ही स्थानीय बुंदेलखंडी की सुंदरता के प्रति सजग होने लगी थी।

" एक दिन आकाशवाणी की रूमानी गिचिर-पिचिर से जो वहा के नाटकों और दूसरे प्रसारणो मे लबालब भरी रहती है, बौखलाकर—और उसका लगभग ध्वसात्मक विरोध करते हुए—मैंने 'स्वर्णग्राम और वर्षा' नामक निबंध लिख डाला और उसे धर्मवीर भारती के पास भेज दिया। रेडियो सेट तोडकर फेंक देने के मुकाबले—जिसे मैं भारी आत्मनियत्रण से ही बचा पाया था—उस प्रसारण के खिलाफ ऐसी प्रतिक्रिया—कम-से कम उतनी नुकसानदेह न थी। यह निबंध निकष' के पहले अक में जो उस समय समकालीन लेखन का, बहुत कुछ प्रतिभा और उतनी ही मात्रा मे स्नाबरी प्रदर्शित करने वाला अर्द्धवार्षिक प्रकाशन था—छपा। उसके बाद कई जगहों से भारती से पूछताछ होने लगी कि लेखक श्रीलाल शुक्ल कौन हैं। विजयदेवनारायण साही, भारती और केशवचद्र वर्मा (ये तीनो पुराने साथी तब तक जमे हुए लेखक बन चुके थे) ने तब तय किया कि ऊबते हुए सिविल सर्वेंट की मुद्रा छोडकर मुझे इस लेखक की ख्याति बरकरार रखनी चाहिए। दफ्तरी भाषा में मुझे एक अवसर दिया गया था और मुझे 'कोई भी पत्थर बिना उल्टे नही छोडना था।'

' जो पत्थर मैंने पहले उल्टे, वे कहानिया थी। पर शीघ्र ही मुझे अनुभव हो गया कि कहानियों की विधा मेरे लिए बहुत मुश्किल है। इसके अलावा, उस जमाने मे—और कुछ हद तक

अब तक चले आते साहित्यिक फैशन के हिसाब से कहानीकार के कारोबार मे प्रतिभा के साथ कई और चीजें भी शामिल थी जैसे यह प्रभावित करने की मुखर आकाक्षा कि कहानियो में मै नई जमीन तोड रहा हू, अपनी कहानियो के सौदे, समीक्षा और प्रत्युत्तरीय समीक्षा से सबधित लिखा पढी करने की जबरदस्त क्षमता और किसी साहित्यिक आदोलन का नेता बनने, या कम-से-कम उसमे शामिल होने, या उसका विरोध करने या इस ढग से उससे दूर रहने का रुझान जो घूम फिरकर उसमे शामिल होने या विरोध करने ही जैसा हो। सक्षेप मे, उस समय कहानिया लिखने के लिए लेखकेतर स्तर की अदम्य ऊर्जा और 'युद्ध देहि' की प्रवृत्ति भी जरूरी थी। मुझमे काम भर की दोनो चीजें मौजूद थी, पर मैं अपने पेशे में इनका बचाकर उपयोग करने के लिए प्रशिक्षित हो चुका था।

" बहरहाल मैंने उपन्यास लिखने शुरू किए और आनदित करने वाली हास्य-कथाए और व्यग्य रचनाए भी लिखी जो लगता है अब बराबर कटुतापूर्ण होती जा रही हैं। (क्यो, इसका जवाब आलोचकों को खोजना होगा, यकीनन मुझे नही।) लेखन मे मुझे कोई ऐसा सघर्ष नही झेलना पडा जिसकी मैं डीग हाक सकू, इसके विपरीत साहित्य जगत मे मुझे प्रोत्साहन सद्भाव और—भले ही यह मेरी खुशफहमी हो—स्नेह के साथ ग्रहण किया गया। '

२

ऊपर का उद्धरण १९७० का है। तब तक 'राग दरबारी' प्रकाशित हो चुका था जिसे आद्योपात व्यग्य की विधा मे लिखा गया हिंदी का पहला बडा उपन्यास कहा गया, पर 'मकान' नही लिखा गया था जिसमे व्यग्य न शैली है, न विधा है, और जो रचना का एक अतर्निहित तत्त्व बनकर उपन्यास मे समाहित है। 'मकान' तक आते-आते मैंने व्यग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न

अस्त्र और एक अनिवाय शत के रूप म पाया है। इन दोना पुस्तका का भी एक एक उद्धरण इस सग्रह मे शामिल किया गया है।

ऊपर कहा गया है कि नियमित लेखन मैंने २७ वष की आयु के बाद शुरू किया। यह सही है पर किशारावस्था के घपलो के प्रति अभी मेरा मोह शायद समाप्त नही हुआ है। रचनाशीलता के उस छुटपुट दौर का एक नमूना 'धोखा' है जिसे इस सग्रह मे सोच-समझकर डाला जा रहा है। यह कहानी १९४५ मे लिखी गई और कुछ सशोधनो के साथ १९५६-५७ मे केशवचद्र वर्मा द्वारा सपादित और अल्पायु मे ही खत्म होने वाल 'तुगभृग' म प्रकाशित हुई थी।

मेरी निगाह मे इस सग्रह की सभी कृतिया मेरी 'श्रेष्ठतम' रचनाए ही हो, एसा लाजमी नही, क्योकि यह भी विचार रहा है कि इसमे ऐसी अपेक्षाकृत अच्छी रचनाए भी आ जाए जो सग्रह रूप म अभी तक नही आई हैं। सग्रह की (उपन्यास अश छोडकर) इक्कीस रचनाओ मे ऐसी तेरह असग्रहीत रचनाए हैं। 'धोखा' को छोडकर १९५४ से १९७६ तक के लव दौर मे लिखी गई इन रचनाओ का लखन वष मैंने जानबूझकर नही दिया है क्योकि, आशा है, पाठको को अपने आप अपेक्षाकृत प्रारभिक रचनाओ की पहचान हो जाएगी।

हिंदी मे व्यग्य के साथ सबसे बडा व्यग्य यह है कि उस प्राय हास्य के साथ जोडकर उसका सहभागी या अनुपूरक मान लिया जाता है। हास्य शुद्ध मनोरजन के लिए है और इस हिसाब स, यदि य रचनाए पाठको का मनोरजन न कर सकें तो शायद मुझे क्षमा मागने की जरूरत न होगी। क्षमा तब मागनी पडगी जब ये रचनाए पाठका का केवल मनोरजन करें या उनका या उनके साथ कुछ भी न कर सकें।

—श्रीलाल शुक्ल

लखनऊ
७ जून १९७८

अनुक्रम

जीवन का एक सुखी दिन

सबेरे नहा धोकर मैंने लाड्री से धुलकर आई हुई कमीज और पतलून पहनने को निकाली और ताज्जुब के साथ देखा, उनका कोई भी बटन टूटा नहीं है। तभी एक कोने में रखे हुए जूतों पर निगाह पड़ी, पुरानी आदत के मुताबिक आज के दिन नौकर ने उन पर काली पालिश लाल वाले ब्रुश से नहीं की थी। जूते पर सही ब्रुश का प्रयोग हुआ था। मन-ही-मन मैंने कहा, यह मेरे जीवन का एक सुखी दिन होगा।

कॉलिज जाने के लिए बस पर चढ़ा और एक रुपये का नोट कंडक्टर के हाथ में दे दिया। जितनी रेज़गारी मिलनी थी, उसने वह पूरी की पूरी वापस कर दी। टिकट की पुश्त पर इकन्नी का प्रोनोट नहीं लिखा। सीट पर मेरी बगल में कोई महिला नहीं बैठी थी, इसलिए फिल्मी रोमांस की कमज़ोरी से फुरसत पाकर मैं आराम से पैर फैलाकर बैठ गया। मेरे पड़ोस में एक साहब आज का अखबार पढ़ रहे थे। मुझे उसकी ओर ताकता हुआ पाकर उन्होंने ऊपर वाला पन्ना मेरी ओर बढ़ा दिया। अखबार में मैंने देखा, न उस दिन किसी विदेशी ने हिंदुस्तान को तरक्की की सनद दी थी, न प्रधानमंत्री की कोई स्पीच ही आई थी। अब मैं इतमीनान से बिना ऊबे हुए अखबार पढ़ने लगा।

रेलवे क्रॉसिंग पर रेलवे के प्वाइंटमैन ने बस को आता हुआ देख-

कर भी फाटक को खुला रहने दिया। बस बिना रुके हुए ऐसी आसानी से फाटक पार कर गई मानो एसा रोज ही हुआ करता हो। कॉलिज के पास बस के रुकने ही मैं बिना किसी को ढकेले, बिना किसी के घुटनो स टकराए, बिना 'थक्यू' और 'सॉरी' कह नीचे उतर आया। स्टड पर एक चाटवाला मुझे मिला तो जरूर, पर उसने न तो मेरी ओर देखा और न मुझे फुसलाने वाली आवाज मे गरमागरम चाट की आवाज ही लगाई।

दिन भर कॉलिज मे बडा सुख रहा। लडको को यूरोप-यात्रा पर एक सीधा सादा लेख पढाया। दूसरे दर्जे म सदाचार की महिमा समझाई। न तो उन्हें कोई प्रेम गीत ही पढाना पडा, न किसी हास्य-व्यग्यपूण उक्ति का अथ समझाना पडा। खाली घटे मे मेरी कोई भी छात्रा अपनी किसी भाव प्रधान कहानी या कविता म सशोधन कराने नही आई। किसी चापलूस छात्र ने मेरी किसी असफल रचना की प्रशसा नही की। किसी लेक्चरर ने विद्यार्थियो के सामने मुझे 'असा यार' कहकर नही पुकारा। मेरे एक प्रतिद्वद्वी लेक्चरर के कमरे से कुछ विद्यार्थी क्राति के नारे लगाते बाहर निकल आए। स्टाफरूम म प्रिंसिपल के बारे में खूब गदे गदे किस्से, बिना अपनी ओर से कुछ कह ही, फोकट मे सुनने को मिल गए।

शाम को घर वापस आने के पहले एक मित्र मुझे एक बडे रेस्त्रा में चाय पिलाने ले गए पर बातें उन्होंने मुझे ही करने दी, खुद ज्यादा तर चुप ही रहे। रेस्त्रा के सामन रिक्शे वाले को पैसे देने के लिए मैंने अपनी जेबें टटोली, मेरी जेब से दस रुपये का नोट निकला पर मित्र की जेब से पहले ही एक अठन्नी निकल आई। रेस्त्रा के भीतर भी मुझे कोई उलझन नही हुई। वेटर का हुलिया बडे लब चौडे रोबदार बुजुग का न था। वह दुबला पतला था और मौसिकिया सा दिखता था। पडोस की मेजो पर न कुछ मसखरे नौजवान थे, न फशनेबल लडकिया थीं न हसी के ठहाके थे न कोई मुझे घूर रहा था न कोई मेरे बारे मे कानाफूसी कर रहा था। रेस्त्रा मे भीड न थी, पर इतन लोग थे कि काउटर के पीछे से मनेजर सिफ हमी को नही, औरों को

भी देख रहा था। हमारे चलने के पहले पास की मेज पर दो गभीर चेहरे वाले आदमी आ गए और जब मैंने आपसी बातचीत में 'एक्जि-स्टेंशिएलिज्म' का अनावश्यक जिक्र किया तब उन लोगो ने निगाह उठाकर मेरी ओर देखा भी। रेस्त्रा से बाहर आने पर मेरा एक परिचित बीमा एजेंट सडक के दूसरी ओर जाता हुआ दीख पडा, पर उसने मुझे देखा नहीं। उसके बाद अचानक ही मुझे तीन परिचित आदमी मिल गए। उन्होंने मुझे नमस्कार किया और उसका जवाब पाया। मेरे मित्र को कोई परिचित आदमी नही मिला।

घर वापस आकर मैंने श्रीमतीजी से सिनेमा चलने का प्रस्ताव किया पर उन्होंने क्षमा मागी और कहा कि उन्हें लेडीज क्लब जाना है। इसलिए मैं पूर्वनिश्चय के अनुसार अपने एक मित्र के साथ सिनेमा देखने चला गया। सिनेमा का टिकट खिडकी पर ही मिला और असली कीमत पर मिला। पखे के नीचे सीट मिल गई। सिनेमा शुरू होने के पहले साबुन, तेल और वनस्पति घी के विज्ञापन वाली फिल्में नही दिखाई गईं। पास की सीट से किसी ने सिगरेट के धुए की फूक मेरे मुह पर नही मारी। पीछे बैठने वालो मे किसी ने अपने पैर मेरी सीट पर नही टके। अधेरे मे किसी ने मेरा अगूठा नहीं कुचला। हीरो की मुसीबत पर किसी पडोसी ने सिसकारी नही भरी। हिंदी की फिल्म थी, फिर भी वह अठारह रील पूरी करने के पहले ही खत्म हो गई। सिनेमा से बाहर आने पर कई रिक्शेवालों ने मिलकर मुझ पर हमला नहीं किया। रिक्शा करने पर मजबूर हुए बिना भी मैं पैदल वापस लौट आया। रात मे सुनसान सडक पर मेरे पैदल चलने पर भी कोई साइकिल वाला मुझ से नही टकराया, किसी मोटर वाले ने मुझे गाली नही दी, किसी पुलिस वाले ने मेरा चालान नही किया।

घर आकर खाना खाने बैठा तो उस वक्त रुपये की कमी पर कोई घरेलू बातचीत नही हुई। नौकर पर गुस्सा नहीं आया। बातचीत के दौरान मैं श्रीमतीजी से साहित्य चर्चा करता रहा, यानी अपने साथ के साहित्यिकों को कोसता रहा। वे दिलचस्पी से मेरी बातें सुनती रहा और मेरे टुच्चेपन को नही भाप पाइ।

घर मे चारो ओर शाति थी। किसी भी कमरे मे बिना मतलब बल्ब नही जल रहा था, न बिना वजह किसी नल का पानी बह रहा था, न दरवाजे पर कोई मेहमान पुकार रहा था, न रसोईघर मे किसी प्लेट के टूटने की आवाज हो रही थी, न रेडियो पर काई कवि-सम्मेलन आ रहा था, न पडोस मे लाउडस्पीकर लगाकर कीतन हो रहा था। और सबसे बडी बात यह कि कल आने वाला दिन इतवार था और उस दिन मेरे सभी उत्साही मित्र शहर से कहीं दूर पिकनिक पर चले जाने वाले थे।

कुत्ते की पिल्ले को नसीहत

दो दो बूंद दूध के लिए अपने ही भाइयो की गरदन पर दात गडाया। एक एक हड्डी के टुकडे के लिए अपने ही पडोसियो से सौ-सौ बार दगा किया। जरा जरा सी बात पर घटे घटे भर चिल्ल-पो मचाई। इस प्रकार अपने सामाजिक गुणों का विकास करते हुए जब कुत्ते का पिल्ला बडा हो गया तो कुत्ते ने उसे राजनीति के ससार मे होनहार समझकर निम्नलिखित नसीहत दी

' बेटा वैसे तो मेरी जिंदगी बडी ही बेतुकी जिंदगी थी। बहुत से इसानो की तरह मह केवल पेट भरने के लिए चारो ओर भटकने में बीती। फिर भी मुझे यह सुभीता था कि मुझे सब प्रकार के महापुरुषो का सत्सग बराबर मिलता रहा। नदियो के किनारे एकात मे पडे हुए कृशागत अनासक्त कुत्तों की सोहबत में मैं बैठा हू। साथ ही परियों जैसी राजकुमारियो के साथ सोने वाले, बडी-बडी मोटरो मे निकलने वाले रईस कुत्तों स भी मेल मुलाकात रखी है। चौराहे पर हर छोटी बात पर आवाज बुलद करने वालों से लेकर एअर-कडीशड कमरों में जीभ निकालकर सिर हिलाने वाले कुत्तों तक से मेरा साथ रहा है। इस प्रकार मेरे पास कोई जायदाद तो नहीं, सिर्फ जिंदगी का तजुर्बा है। और उसी को इस देश के सत्तर फीसदी बुजुर्गों की तरह मैं तुम्हारे

लिए उत्तराधिकार मे छोड रहा हू। अब मेरी कुछ नसीहतें अच्छी तरह ध्यान लगाकर और दोनो कान उठाकर सुनो।

' इसानो की अपेक्षा हम कुत्तो मे कुछ स्वाभाविक अच्छाइया हैं। हम सब काले, पीले, सफेद जाति के कुत्ते बिना किसी भेदभाव के आपस मे रह लेते हैं। कुछ विशेष इलाको से आने वाले नौकरो की अपेक्षा हम अधिक वफादार और दूसरे विशेष इलाको से आने वाले चौकीदारो की अपेक्षा ज्यादा मुस्तैद होते हैं। निरतर दौरा करने वाले आदश कार्यकर्त्ताओ की तरह जहा जिस किसी से जो भी मिल जाता है, चुप चाप वही खा लेते हैं। किसी अच्छे पुलिसमैन की तरह महज सूघकर अपराधो का पता लगा लेते हैं। गीता मे कह गए योगियों की तरह जब सब लोग सोते हैं तब हम निरतर जागत हैं। आदश नेताओ की तरह दुनिया की निगाह मे हमारी कोई व्यक्तिगत पूजी नही है पर वास्तव मे हम दूसरे पूजीपतियो के हितो की रखवाली में ही तल्लीन रहते हैं। उच्चकोटि के कूटनीतिज्ञो की तरह हम तगडे विरोध के सामने दुबककर दूसरी ओर चल देते हैं। और साधारण विरोध के सामने जमकर चीखते हैं। तजुर्बेकार अधिकारियो की तरह बडो के आगे दुम हिलाते और छोटो को देखकर गुर्राते हैं। परमहसो की भाति बिना किसी साज सामान के नीचे-ऊचे स्थानों का भ्रमण करते और अन्वेषको की तरह गदी से गदी जगह पर छिपे पदार्थों की खोज करते हैं।

' ये तुम्हारे जातीय गुण हैं। साधारण मनुष्यो की देखादेखी तुम कभी भी इनका ह्रास न होने देना।

' मगर साथ ही हममे कुछ कमजोरिया भी हैं। हम बीसियो की सख्या म मिलते हैं चीख चीखकर लबी-लबी योजनाओ पर बहस करते हैं, पर काम के वक्त किसी नाली में पडे नजर आते हैं। हम ऐंठकर तिरछे तिरछे चलते हैं, पर अपने हाथ से अब भी कुछ पैदा नही कर पाते, बाहरी लोगो का ही दिया खाते हैं। बडे बडे सकल्पों के बावजूद हजारा झटके खान पर भी हमारी दुम अब भी टेढी की टेढी ही है। स्वतन्त्र होने पर भी अपने गले मे पट्टा डलवाने को हम आज भी गौरव की बात मानते हैं।

" वैसे तो आजकल इन बातो की लोग चिंता नही करते, पर अच्छा यही होगा कि तुम इन कमज़ोरियो से सावधान रहो।"

" एक बार एक आदमी अपना खाना हज़म नही कर पाया, इसलिए उसने उसे मुह से गिरा दिया। मेरा हाज़मा उससे तगडा था। इसलिए मैंने उसे खाकर पचा लिया। वस्तुत यह अपने अपने हाज़मे की बात थी। पर मेरी ताकत से कुढकर उस आदमी ने एक दोहा कहा कि—

जो विषय सतन तजी मूरख तेहि लपटात।
मनुज वमन करि देत है स्वान स्वाद सो खात॥

" मैंने इसका जवाब उस समय नही दिया था। पर आज देखा, जिस देश में मेरे ऊपर एसी भद्दी बात कही गई थी, वहा अब दूसरे देशो के छोडे हुए दूध के पाउडर के डिब्बे और अनाज के बोरे हजारो की सख्या में बराबर उतर रहे हैं और स्वादपूवक खाए जा रहे हैं। इससे यह नसीहत लो कि बिना समझे बूझे किसी को बुरा भला न कहना चाहिए।

" अब तीन बातें ऐसी बता रहा हू जिसमे तुम्हें अपना चलन छोड-कर हज़रत इसान का चलन अपनाना होगा।

" हाथी के दात खाने के और होते हैं, दिखाने के और। राष्ट्रो की घरेलू नीति पकड धकड और लाठी गोली की भले ही रहे, पर विदेशी नीति स्वागत, दावत और मुस्कान पर चलती है। इसके विरुद्ध तुम्हारी घरेलू नीति में प्रेम है और विदेशी नीति मे भाग झपट और गुर्राहट। अतर्राष्ट्रीय हैसियत पाने के लिए तुम्हें अपनी नीति उलटनी पडेगी।

" हम बिल्लिया को देखते ही पुरानी दुश्मनी के नाम पर उन पर झपट पडते हैं। पर आजकल ससार म शातिपूर्ण सह-अस्तित्व की बात चल रही है। इसलिए खुले आम तुम्हें बिल्लियो को भी इतमीनान दिलाना होगा कि तुम उनके मित्र हो। एक ही कमरे मे, एक ही कालीन पर उनके साथ तुमको लोटना होगा। यह दूसरी बात है कि आत्म रक्षा के लिए तुम उन पर किसी समय, किसी भी स्थान पर हमला कर सकते हो, और बरखुरदार मत भूलो कि प्रत्येक समय, प्रत्येक स्थान पर

हमारे लिए आत्म रक्षा की समस्या बनी रहती है।

"तीसरी बात तालीम के मामले में तुम्हें मेहनत करने की या परेशान होने की जरूरत नहीं है। आज भी अच्छे खानदान और प्रतापी मा-बाप के नाम के सहारे हज़ारो लोग अच्छी तरह पनप लेते हैं। इसलिए तुम्हें सिफ अपनी चाल-ढाल, अपना रग-ढग ऐसा रखना चाहिए कि तुम्हें देखते ही लोग पहचान लें कि यह कुत्ता ऊची पीढी का है।

"मेरे राहते जान, आखिर मे तीन बातें ऐसी भी बता रहा हू जिन्हें लेकर हज़रत इसान कुछ भी करें, तुम अपने चलन पर अडिग रहना।

"बडे-बडे दफ्तरो थानो और कोतवालियो मे जो कुछ भी होता रहे, तुम चोरों के सामने अपनी आन कायम रखना और उनसे कभी समझौता मत करना।

लबे चौडे फार्मों और मालगोदामो के चौकीदार और कारिंदे भले ही हाथ पैर फेंकते रहे पर तुम्हें जिस चीज़ की हिफाजत के लिए रखा गया है, उस पर कभी मुह मत मारना।

' और शान इसी मे है कि हर वक्त छिपी ढकी जगहो मे लोग चाहे जैसा कहत और करते रहें पर बिना वक्त आए तुम कभी भी प्रेम के रास्ते पर कदम न रखना। मत भूलो, हर वक्त भावुकता दिखाना और हर मौमम म प्रेम का राग अलापना निकम्मे इसानो का काम है।

एक जीते हुए नेता से मुलाकात

जिन्होंने मेरा 'एक हारे हुए नेता से इंटरव्यू' पढ़ा है उन्हें याद होगा कि हमारा वह हारा हुआ नेता अस्सी साल से ऊपर था और नकली इंद्रियों के सहारे—यानी चश्मा, नकली दांत, इयरफोन आदि फिट करके देश की राजनीति का संचालन करता था। इसलिए जब मैं इस जीते हुए नेता से मिला और उसके पने, खुरदरे और लपलपाते हुए व्यक्तित्व की चपेट झेली तो मेरा आशावाद फिर से जाग उठा। उस हारे हुए नेता से मिलकर मैं सोचने लगा था कि देश जहन्नुम में जा रहा है। इस जीते हुए नेता से मिलकर मुझे यकीन हो गया कि हमारा देश सीधे स्वर्ग जा रहा है।

वैसे तो यह नेता न युवा था, न तुर्क था, पर उसे अपने संगठन में युवातुर्क कहा जाता था। उसकी उम्र पचपन के करीब होगी पर सैकड़ों यूथ क्लबों और छात्र-संगठनों में घुसते समय उसे सींग तुड़ाने की जरूरत नहीं थी। वह चुस्त और ऊंची आवाज में बोलता था और हमेशा बोला ही करता था। बहुत बोलने के कारण लोग उसे बहुत विचारशील मानते थे और मुंह खोलकर वह जो भी आवाज निकाल देता था, वही विचार बन जाती थी। मोटर छोड़कर जब कभी उसे पैदल चलने का मौका मिलता तो वह बहुत तेजी से चलता। कोशिश

उसकी यही रहती कि उसकी तेज चाल देखकर लोगों को प्रात भ्रमण पर निकले हुए महात्मा गाधी की याद आ जाए, यह और बात है कि कुछ लोगो को उसकी तेज रफ्तार सिफ किसी पाकेटमार की याद दिलाती थी।

हम उम्मीद थी कि चुनाव जीतने के बाद यह नेता मत्री बन जाएगा और उसके बाद ही वह खुद जिस तेजी से चलता है उसी तेजी से देश भी चल निकलेगा। पर वह मत्री नही बनाया गया, या यू कहिए कि वह मत्री नही बना। जो भी हो, क्योकि उसका एक जिगरी दोस्त मत्री बन चुका था, इसलिए वह लगभग मत्री की हैसियत मे आ गया। वह जिगरी दोस्त सीधा साधा भोला भाला आदमी था और बाबाओ और ज्योतिषियो को छोडकर लोगो से मिलने मे झिझकता था। इसलिए धीरे-धीरे वह असली मत्री से लगभग मत्री की हैसियत पर आ गया और हमारा गतिशील नेता लगभग मत्री की जगह असली मत्री का रोब खीचने लगा।

बहरहाल, लगभग मत्री की हैसियत भी काफी ऊची थी और उसके मकान पर जिसे अब मकान नही बल्कि बगला कहा जाने लगा था, सैकडो आदमियो की भीड सुबह से रात तक मौजूद रहती थी। दूर-दूर तक शोहरत थी कि उस तक पहुचने के लिए न सिफारिश की जरूरत है, न रिश्वत की। भीड को पार करने लायक सिफ मजबूत कधा और हिम्मतवर फेफडो की जरूरत है। मैंने यह भी सुना था कि दूसरो का काम करते समय वह गलत सही, नैतिक-अनतिक के झमेले मे नही पडता, गीता के कर्मयोगी की तरह बस काम करता जाता है, यानी दूसरों का काम दूसरे आदमी की तरफ स करके अपनी लगभग मत्री वाली हैसियत बेलौस बनाए रखता है।

उसके मकान के पास फाटक से ही मुझे भीड मिलनी शुरू हो गई। दरअसल, कुछ लोग फाटक पर चढ़े हुए थे और कुछ लटके हुए थे। एक ओर आम का भारी पेड था जिसकी एक शाख जमीन से चार पांच फुट ऊपर थी। कई लोग इस शाख पर बैठे थे। देहात से आए हुए कुछ लोग पोटिको तक पहुचने वाली सडक पर अगोछे बिछाकर

बैठ गए थे। स्टेडियम मे क्रिकेट का टेस्ट मैच होते समय बाहर जिस तरह निठल्लों की भीड़ जमा हो जाती है, कुछ वैसा ही माहौल था। पोर्टिको तक पहुचते-पहुचते मैंने देखा, आसपास जितने पेड़ थे, उनके तनों और निचली शाखाओ का सहारा लिए हुए कई लोग बैठे हैं या खड़े हैं या झूल रहे हैं। पोर्टिको तक पहुचते पहुचते मुझे दो-तीन बार सचमुच ही अपने कधों और फेफडो की मजबूती की परीक्षा देनी पड़ी, पर किसी चिमिरखी जैसे आदमी ने मुझसे कहा—'चले जाओ, बाबू साहेब पोर्टिको मे बैठे हैं। आज भीड़ कम है, जल्दी काम हो जाएगा।"

बात सही थी, पोर्टिको मे मोटर न थी, उसकी जगह बीसियो टेढ़ी मेढ़ी बतरतीब कुर्सियां पड़ी थी, उन पर दो शख्स फी कुर्सी की औसत दर से लोग बैठे या टिके थे। बीच मे एक कुर्सी पर हमारा नेता, युवा वर्ग का प्राण, युवातुक, लगभग-मन्त्री, पैर फैलाये बैठा था, उसके बदन का ऊपरी हिस्सा एक घरेलू ढग के मटमैले कपड़े से ढका था, चेहरे पर साबुन का फेन फैला था। उसकी हजामत बन रही थी।

बार-बार बगल मे रखा हुआ टेलीफोन बजता और वह अपनी बात को बीच में काटकर फोन पर बात करने लगता, तब-तक नाई एक किनारे खड़ा होकर अपनी हथेली पर उस्तरे को लौटते पौटते उसकी धार तेज करता रहता। फोन रखते ही वह किसी नये आदमी से बात करने लगता और बीच-बीच मे नाई को ललकारता, "बनाते चलो, बनाते चलो।" नाई मौका देखकर गाल या ठुड्डी के किसी हिस्से पर उस्तरे के एकाध हाथ चलाता और फिर उसकी बात पूरी होने का इतजार करने लगता।

मैं पोर्टिको के एक कोने मे खड़ा हो गया था। नेताजी की आखें चारो ओर नाच रही थी। मुझे देखते ही उसने कहा, 'खड़े मत रहिए। बठ जाइए।' उसके बाद ही चारो ओर से 'बैठ जाइए' 'बैठ जाइए' के कोरस ने मेरे कानो पर हमला बोल दिया। नेता ने कहा, 'किसी के भी साथ बैठ जाइए। क्या बताए, चाहे जितनी

कुर्सियां डल्वाई जाए, कम ही पढ जाती हैं ।" उसने लाचारी से नाई की ओर देखा, नाई ने इस बार दाए गाल की दाढी साफ कर दी। नेता ने कुछ कहने को मुह खोला तो वह उस्तरे को आसमान की ओर उठाकर एक किनारे हो गया । नेता ने कहा, 'तुम्हीं से कह रहा था । फटाफट दाढ़ी बनाओ । जल्दी खतम करो ।' कहकर उसने दूसरी ओर गदन मोड दी । किसी से पूछा, 'तुम्हारा क्या काम है ?' वह सबको 'तुम' कह रहा था । कुर्सी पर बैठे हुए आदमी ने कहा, 'मत्रीजी से कहकर भूरेलाल का तबादला कराना है ।' नेता ने कहा, "करा तो दूगा पर भूरेलाल ऊचे दर्जे के हरामी हैं, यह याद रखना । तुम्हारे कौन लगते हैं ?" "जी, मेरा तो लडका है ।' उसने जवाब दिया । नेता ने सपाट लहजे म कहा, 'तो उस सही रास्त पर चलाओ, नही तो किसी दिन भूल जाएगा । अब तुम रास्ता नापो, आज बातचीत के लिए ज्यादा टाइम नही है । भूरेलाल का काम हो जाएगा । मुशी, दज कर लो ।"

एक मुशी ही जैसे दिखने वाले आदमी ने रजिस्टर में कुछ लिख लिया । *जिस कुर्सी के एक बटा बीस हिस्से पर अपने नितम्ब का एक* बटा पचास हिस्सा टिकाकर मैं बैठने का अभिनय कर रहा था उसके दूसरे हिस्से पर बैठे हुए व्यक्ति ने कहा, "इनका काम हो गया । मैंने पूछा "कैसे ?" देखत नही हा रजिस्टर मे इसे दज कर लिया गया है ।' नेता एक दूसरे आदमी स कह रहा था, तुम हमेशा छोटा मोटा काम लेकर खडे रहते हो । फला को चपरासी बना दा, फला को क्लर्की दिला दो । इन कामो के लिए मैं ही बचा हू ? नेता का दूसरा गाल अब भी फेने से सना था, एक गाल की दाढ़ी साफ हो गई थी । कुल मिलाकर किसी मसखरे का चेहरा लग रहा था । मैंने सोचा इस देश के नेतृत्व के लिए यह आदश चेहरा है ।

वह आदमी खडा हो गया । बोला, तुम्हारे लिए क्लर्की दिलाना छोटी बात है तो बैजनाथ को कोई बडी नौकरी ही दिला दो । उसे कलेक्टर बना दो, या हो सके तो कहीं ऐम्बसेडर बनाकर भिजवा दो ।' नेता हसा, बोला 'मुशी इसे दज कर लो । बजनाथ को ऐम्बसेडर

बनवाना है।" फिर वह लोगो को सुनाकर कहने लगा, "आप लोगो का आशीर्वाद रहा तो कभी सचमुच ही ऐम्बैसडरों की नियुक्ति करूगा।" इसस कोई भी असहमत नहीं था।

"तुम क्या चाहते हो ? जल्दी बोलो, मैं उठ रहा हू।" नेता ने किसी से कहा और मैंने पाया कि वह मुझी से बात कर रहा है। मैं उसकी ओर बढा। उसने कहा, "वहीं से बोलो" और किसी दूसरे से बात करने लगा। फिर मुझे चुप देखकर कहा, "बोलो, बोलो, बोलते जाओ।" मैंने एक कागज निकालकर कहा, 'मत्रीजी से मुझे ।'

"फियट चाहिए न ? कोई बात नहीं, एलाट करा दूगा।" उसने मेरी बात काटकर कहा। मैंने कहा, "जी, फियट नहीं ।"

"तो स्कूटर चाहिए ? दिला दूगा, पर छ महीने लगेंगे। अपना नाम इधर मुशी को लिखा दो। दरखास्त छोड दो।" वह अब दूसरे आदमी से बात करने लगा था। मैं नेता के नजदीक पहुच गया। बोला, "मेरे गाव के अस्पताल मे दो साल से कोई डाक्टर नहीं है। किसी की तैनाती करनी है।"

'किसकी तैनाती ? तुम जाना चाहते हो ?" नेता ने पूछा।

"कोई भी डाक्टर भिजवा दीजिए।"

"साफ साफ बताओ न भाई। तुम्हें वहा अप्वाइट करवा दू।"

'पर मैं डाक्टर नहीं हू।"

"तो तुम्हारे लडके का, भतीजे को, जिसको बताओ उसको अप्वाइट करा दू।"

"उनमे कोई भी डाक्टर नहीं है। हमे तो वहा के लिए एक डाक्टर चाहिए।" नेता ने चीखकर कहा, "मुशी, इनकी बात समझकर रजिस्टर मे दर्ज कर लो। मुझे तो कुछ समझ मे आया नहीं कि इनका काम क्या है।' नाराजगी मे एक क्षण के लिए जैसे ही वह चुप हुआ, नाई ने दाढ़ी का काम निपटाना शुरू कर दिया।

अचानक मकान से किसी महिला के गरजने की आवाज आई और कई लोग घर के विभिन्न दरवाजों से जो ड्राइग रूम, बेडरूम और बाथरूम के हाग, निकलकर पार्टिको और मैदान में भरने लगे।

एक जीते हुए नेता से मुलाकात

भेड़ों के झुंड को भगाया जा रहा हो, इस तरह उन्हें भगाती हुई एक महिला बरामदे मे आ गई। वह काफी सुंदर थी पर चीखने के कारण उसकी आवाज वीभत्स हो गई थी।

नेता ने मुस्कुराकर कहा, 'लोगों का यह हाल है कि अपनी बात कहने के लिए मेरे बाथरूम तक मे जाकर बैठ जाते हैं। और इस बेचारी का यह हाल है कि दिन भर उन्हें हड़काते ही बीतता है।' इतना कहकर वह तेजी से बरामदे मे पहुचा, अपनी पत्नी का कधा थपथपाकर कहा, 'घबराओ नही, सबको दो मिनट मे निबटाता हू।"

बरामदे के एक कोने पर शायद बाथरूम था। वहा बैठे हुए मुलाकातियो को निबटाने, और उसी के साथ नहाने के लिए वह उधर चला गया। रास्ते म कुर्ते के बटन खोलता रहा।

पोर्टिको मे खड़े हुए एक प्रोफेसरनुमा आदमी ने अंग्रेजी मे कहा, "कितने अफसोस की बात है कि इसे मत्रिमडल मे नही लिया गया। वहा इसके डाइनैमिज्म का कोई मुकाबला न कर पाता।'

दो पुराने आदमी

कुछ दिन हुए, रामानदजी और राकेशजी अपने-अपने पेशे से रिटायर होकर सिविल लाइस मे बस गए थे। अपने यहां का चलन है कि रिटायर होने के बाद और इस लोक से ट्रासफर होने के पहले बहुत से लोग सिविल लाइस मे बगले बनवा लेते हैं। इन्होंने भी वहा अपने-अपने बगले बनवा लिए।

रामानदजी किसी समय मे चोरी किया करते थे। वे पुराने स्कूल के चोर थे, इस कारण उनका विश्वास तात्रिक क्रियाओं में भी था। बाद में चोरी सिखलाने के लिए उन्होंने एक नाइट स्कूल खोला। कुछ समय बीतने पर उन्होंने चोरी के माल के क्रय विक्रय की एक दुकान कर ली। इस सबसे अब वे रिटायर हो चुके थे और अपने को रिटायर कहा करते थे।

राकेशजी रिटायर तो हो चुके थे, पर चूंकि वे कवि थे इस कारण वे अपने को रिटायर मानने को तैयार न थे। कभी उन्होंने एम० ए० पास किया था, फिर वे एक कॉलेज मे प्रोफेसर हो गए थे। उस पेशे में तो वे ज्यादा नहीं चल पाए पर कवि की हैसियत से उन्हें ऊंचा स्थान मिल गया था। अर्थात् अब तक उनके पास उनकी कविताएं थीं, अपने प्रकाशक थे, अपने ही आलोचक थे, अपने ही प्रशसक और पुरस्कार-

दाता थे। इधर कुछ आलोचक उन्हें कविता के क्षेत्र में भी रिटायर कहने लगे थे।

दोनों पड़ोसी थे। दोनों को एक-दूसरे के पुराने व्यवसाय का ज्ञान था। उनमें मित्रता हो गई। दोनों प्राय हर बात में एकमत रहते थे। दोनों यही समझते थे कि इस युग में योग्यता और कला का ह्रास हो रहा है और आज की पीढ़ी बिल्कुल जाहिल, निरर्थक और अयोग्य है।

इसीलिए एक दिन लॉन में टहलते-टहलते राकेशजी ने कहा, "आज की पढ़ाई में रखा ही क्या है? मैं आठवें दर्जे में हिंदी कविता का अर्थ अंग्रेजी में लिखता था। अब बी॰ ए॰ में अंग्रेजी कविता का अर्थ हिंदी में लिखाया जाता है।'

रामानंदजी बोले—'आप ठीक कहते हैं। हमारे जमाने में कुछ लोग फर्श पर डंडा ठोककर जमीन में गड़े हुए धन का हाल जान लेते थे। आज के दिन सामने कपड़े से ढकी तिजोरी रखी रहती है और लोग उसे मेज समझकर बिना छुए ही निकल जाते हैं।"

राकेशजी ने कहा और जमकर साधना करने का तो समय ही चला गया है। आजकल ।"

बात काटकर रामानंदजी बोले, 'साधना अब कौन कर सकता है? हम लोगों ने अमावस की रात में मसान जगाया था। मुर्दे की खोपड़ी में चावल पकाकर उसे जिस घर में डाल देते, वहां का माल ।"

राकेशजी ने जल्दी से कहा, "नहीं नहीं, वैसी साधना से मेरा मतलब नहीं है। मैं साहित्य-साधना की बात कर रहा हूं। आजकल लोग व्याकरण पिंगल, काव्यशास्त्र का नाम तक नहीं जानते और नयी नयी बातों के आविष्कारक बन जाते हैं। कोई दो दो पंक्तियों को लिए मुक्तक लिख रहा है कोई अतुकांत चला रहा है, कोई क्रियाओं के नये नये प्रयोग भिड़ा रहा है। और पूछ बैठिए कि अकर्मक क्रिया और सकर्मक क्रिया में क्या भेद है तो अंग्रेजी बोलने लगेंगे।'

एक गहरी सांस खींचकर रामानंदजी बोले, आप सच कहते हैं अपने यहां भी यही दशा है। दीवार का कौन कहे कागज पर कायदे की सेंध नहीं लगा सकते और बात करेंगे सिटकनी खोलने की, रोशन-

दान ताडने की, जेब काटने की। नयी-नयी तरकीबों की डींग हाकेंगे और पुरानी ।"

राकेशजी अपनी धुन मे कहते गए "और विनम्रता तो रही ही नहीं। कुछ सिखाओ तो सीखेंगे नहीं। कुछ बताओ तो बिना समझे-बूझे अकड़ने लगेंगे। आज के साहित्यिक, साहित्यिक नहीं—लठैत हैं, लठत।"

रामानदजी समर्थन करते हुए बोले, "साहित्यिकों के क्या पूछने राकेशजी! यहां तो अबके चोर, चोर नहीं रहे। वे तो डकैत हैं, डकैत! अपना पुराना तरीका तो यह था कि घर में घुसे और बच्चे ने भी खास दिया तो विनम्रतापूर्वक बाहर निकल आए। पर आजकल ये लोग किसी को जागता हुआ पा जाए तो " सहमकर उन्होंने वाक्य पूरा किया, "बाप रे बाप!"

अब राकेशजी उत्साहित हो गए और बोले, "ये सब जाहिल हैं, निरर्थक हैं। पहले तो लिखत लिखने हाथ ऐसा मज जाता था कि बिना पढ़े ही दूर से समझ जाते थे कि अमुक कवि की कविता है। उस पर उनका व्यक्तित्व झलकता था ।"

रामानदजी ने धीरे से कहा, 'यही तो। सेंध की शक्ल देखकर लोग कह देते थे कि यह फला ने लगाई है। अब तो सिटकनी खुली पड़ी है ।

उपमा राकेशजी को पसद आ गई। बोले, "हां, आजकल यह तो है ही। साहित्य के दरवाजे की सिटकनी अदर से स्प्रिंग खोलकर न जाने कितने लोग घुस आए हैं।"

बिना समझे हुए रामानदजी ने कहा, 'जी हां पहले तो सेंध का ही चलन था।"

राकेशजी ने जल्दी से कहा, "जी आप मेरा मतलब नहीं समझे। मैं कह रहा था कि ।'

अकस्मात उन्होंने चौंककर कुरते की जेब पकड़ ली। रामानदजी का हाथ उनकी मुट्ठी में आ गया। नाराजगी से राकेशजी बोले—'यह क्या? आप मेरी जेब काट रहे थे?"

रामानदजी ने विनम्रता से हाथ छुड़ाकर कहा, "यही समझ लीजिए। बात यह है कि बात यह है कि ये नौसिखिए कुछ काम तो बड़ी सफाई से कर दिखाते हैं। मैं आपस में देख रहा था कि यह जेब वाला काम मुझ से भी चल पाता या नही।"

राकेशजी नम पड़े। बोले 'देख लिया आपने।"

बिना उत्साह के, रामानदजी सास खीचकर बोले, 'देख लिया राकेशजी, यह सब अपने बस्बूते की बात नही। जो हमने कर लिया वह आज वाले नही कर पाते हैं। पर इनके भी कुछ ऐसे खेल हैं जो हम नही खेल पाते। अपना अपना जमाना है।"

सहसा राकेशजी बिगड़कर बोले, "यह सब आप ही के यहा चलता होगा। अपने यहा तो अब भी जो कहिए, करके दिखा दू। रामानदजी यह तो करने की विद्या है। चाहे कवित्त हो, चाहे कविता हो, या हो नयी कविता। लिखूगा तो आजकल वालों से अच्छा ही लिखूगा।"

रामानदजी राकेशजी की ओर देखते रहे। उनमे कभी मतभेद नही हुआ था। पहली बार उन्हें लगा कि कुछ ऐसी भी बातें हैं जहा उनकी राय हमेशा एक नही होगी।

लखनऊ

"शरीफों का ज़वाल और कमीनों का ज़ोर हुआ। तखफीफ का बाज़ार गर्म हुआ। अय्याशी का दौर शुरू हुआ। आवारा औरतों की बन आई। बाज़ार का मामला भी देखादेखी खराब हुआ। हर चीज़ में मिलावट हुई। नाज़िम और आमिल सब नालायक थे।"[1]

आमने-सामने विलायती ढंग की दुकानें, सिनेमा, रेस्त्रां और बार थे। जिन, व्हिस्की और बियर के हवाई विज्ञापनों की नियॉन रोशनी जल निषेध की नीति को प्रमाणित कर रही थी। फियट और ऐम्बेसेडर कारों की भीड़ में एकाध इम्पाला जब कभी निकलती थी तो हम मुंह फाड़कर उसे आदर से देखते थे, जैसे देसी विश्वविद्यालयों में विलायती विद्यार्थियों को देखा जाता है। फैशनेबुल, दुबली-पतली लड़कियां—जिनके जीवन का मुख्य कार्यक्रम अपनी ओर लफंगों का और लफंगों की ओर पुलिस को आकर्षित करना था—कूल्हे, वक्ष और टखने मात्र में संपूर्ण—मचलती हुई सड़क पर चली जा रही थीं। चमचमाती दुकानों पर

१ मिर्ज़ा रज्जबअली सरूर लिखित 'फसानए इब्रत' का एक उद्धरण। इसका संबंध वाजिदअली शाह के पिता हज़रत अमजदअली शाह के शासनकाल से है।

चालाक छोकरे ढीली बुशशर्ट, लहलहाते बालों और चूड़ीदार पैंटों में कसे हुए, पुल्लिंगवान् वेश्याओं की तरह बैठे थे।

हजरतगंज का बाजार काफ़ी आधुनिक हो रहा था। पर यह आधुनिकता वैसी ही थी जैसी आज की कुछ कहानियों मे केवल ईसाई लड़कियों को हीरोइन बनाकर पैदा की जाती है।

मैं एक नये रेस्त्रां के सामने खड़ा था। मेरे साथ दो अदद पत्रकार, हिंदी के एक प्राध्यापक और एकाध होनहार होते-होते इरादा बदल देने वाले साहित्यकार थे। हिंदी प्राध्यापक ने कहा, "हजरतगंज बड़ा फैशनेबुल होता जा रहा है।"

खंडन करने की अपनी पैदायशी प्रवृत्ति के अनुसार मैंने कहा, "मुझे तो बड़ा देहाती-सा लगता है।" फिर कुछ सोचकर मैंने कारण बताए, "क्योंकि यहां राजधानी है, दूर-दूर की झोंपड़ियो और टपरो के लोग यहां आकर बस रहे हैं। यहीं विधान-भवन है। कोटद्वारा से सिसवा बाजार तक के गावों और कस्बों की संस्कृति आपको यहा फूलती फलती मिलती है। कॉफी हाउस मे ही जाइए—जाते ही किसी कस्बे के नाई की दूकान की याद आती है। सभी आपके मामले मे टांग अड़ाते हैं। सभी में काश्तकारों की सी घरेलू चालाकी है। कोई भी आपको चुपचाप जीने नहीं देता।"

प्राध्यापक को मेरी बात जची नही, पर उसमे उलटबासी थी, इसलिए उन्होंने कबीर की स्मृति मे उसे झेल लिया। फिर वे मेरे पीछे वाले रेस्त्रां में लगी हुई एक आधुनिक चित्रकार की प्रदर्शनी का जिक्र करने लगे।

रेस्त्रां मे किसी संदिग्ध चित्रकार ने अपने चित्रों की बेशर्म नुमाइश लगाई थी। अंदर मेज पर कुछ मनीषी लोग (इंटेलेक्चुअल) बिना किसी खास वजह के कुछ समस्याओं पर विचार कर रहे थे। उन्हें बिना सुने ही मैं जानता था कि न समस्याएं उनकी हैं, न विचार उनके हैं। जो भ्रम यह रेस्त्रां और तस्वीरें पैदा करती थी, वही ये मनीषी भी पैदा करते थे। बाहर भी, जैसा कह चुका हूं, आधुनिकता का भ्रम देने वाली बहुत-सी चीजें थी।

पर जहां मैं खडा था, उसके दाए-बाए किसी ने इस आधुनिकता की कल्ई खुरच दी थी, क्योंकि एक ओर एक थाली वाला, सस्ते दाम का, निम्न मध्यवर्गीय भोजनालय था। दूसरी ओर हनुमानजी का एक मदिर था, जहा कई लोग अपने को भूलकर राधा-कृष्ण का कीतन कर रहे थे। कुछ पेंट-कमीज वाले बाबू लोग झेंपझेंपकर हनुमानजी को प्रणाम कर रहे थे। कुछ बिना झेंपे उन्हें प्रसाद चढाकर तिलक लगवाकर हमे चुनौती-सी देते हुए आगे बढ़े जा रहे थे। मैं भारतीय तटस्थता की नीति से चुपचाप खडा था।

मदिर से दस गज की दूरी पर जाकर एक नयी कार रुकी। उसमे दो आदमी बैठे थे। उनके चेहरों से लगता था कि ये अच्छी तरह खाने वाले और, खास तौर से, अच्छी तरह पीने वाले आदमी हैं। वकों के शेयर, तस्कर-व्यापार, इनकम टैक्स की चोरी और किशोरियो को फुसलाने और अफसरों को खिलाने पिलाने का वातावरण, तस्वीर के सतो के तेजोमडल की तरह, उनके चेहरे के चारो ओर फैला था। उनके हाथो मे देखते देखते जादू के जोर से दो गिलास आ गए। मेरे देखते-देखते उन्होंने गिलासो में बोतल से कुछ उडेला और उसे सतोष-पूवक पीने लगे।

हिंदी के प्राध्यापक से मैं अब बातें करने लगा था। मैंने अपनी एक प्रिय बात बताई, 'छायावाद-काल हिंदी-कविता का अधा-युग है।"

वे चिढकर प्रसाद का एक उद्धरण देने की तैयारी करने लगे। बोले, "समसामयिक विश्व-साहित्य मे प्रसाद के मुकाबले ।"

मैंने जिज्ञासा की, "समसामयिक विश्व साहित्य के बारे मे आप क्या जानते हैं।"

उन्होन बिगडकर पूछा, "आप क्या जानते हैं ?"

मैंने समझाया, "मैं हिंदी-लेखक हू। आप इसी से समझ सकते हैं कि मैं 'एकाउटर' और 'टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट' पढता हू, जो आप नही पढते।"

"मैं प्रसाद का साहित्य पढता हू, जो आप नहीं पढते।"

मैंने सास खीचकर कहा, मुझमे और आप मे लेखक और अध्यापक

का मौलिक अतर है।"

इसका भी कोई जवाब न मिल जाए, इस डर से मैं एकदम से पत्रकार मित्रो से उपचुनावो की बात करने लगा। ऐसा करते ही मैं लखनऊ मे हो गया।

मोटर वालों ने दूसरा गिलास भरा। थाली वाले भोजनालय से बेकार्ड्स्टार पावो और छतनार मूछो का एक जत्था बाहर निकला। हनुमानजी के मदिर मे बडे जोर से जय-जयकार हुई। किसी देशी रियासत की एक विलायती मोटर किसी सबरी औरत के हाथो मे अटकी हुई, टढी मेढी होती सामने से निकली। उसकी नबर-प्लेट पर रियासत का नाम और गाडी का नबर हिन्दी मे लिखा था। हम इतने से ही कृतकृत्य हो गए। दो-तीन ऐंग्लो इडियन लडकिया फुटपाथ पर खडी होकर हनुमानजी को घूरने लगीं। जवाब मे हनुमानजी के भक्त लडकियो को घूरने लगे।

सामने एक रिक्शा आकर रुका। उस पर सालहवी शताब्दी बैठी थी। यानी बुरके के अदर एक औरत थी। मेरे साथ का एक पत्रकार रिक्शे के पास जाकर खडा हो गया। उसने दो एक बार नाक सिकोडी, जैसे कुछ सूघ रहा हो। फिर लौटकर हमारे पास वापस आया और अपने साथी से बोला "तुम जाओ।

'नही तुम जाओ।

मेरी ओर इशारा करके कहा गया, 'ये जाएगे।

ये क्या जाएगे?

'तो फिर तुम्हीं जाओ।'

वह उसी रिक्शे पर बैठकर चला गया। अग्रेजी शाम और हिंदुस्तानी रात के आठ बजे।

अब गर्जिंग शुरू हुई। हम लोग गर्भवती स्त्रियो की अदा से धीरे धीरे टहलते हुए एक-दूसरे के कधे से कधा लडाते सडक पर चलने लगे। चलते चलते गाधी आश्रम के सामने ऐसे ही खडे हो गए— वही गाधी-आश्रम जहा असली मधुमक्खियो से निकला हुआ शहद मिलता है। हमारे एक साथी ने फुटपाथ पर सिगरेट सुलगाई। एक

गदी कमीज और पतलून वाला आदमी हमारे पास आकर खड़ा ह
गया और मागकर सिगरेट पीने लगा। लोग उससे इज्जत के सा
बातें करने लगे। मैंने पूछा, 'तुम्हारी जेब म आज किस क
किस्मत है?"

उसने डेढ हजार और उससे ऊपर तनख्वाह पाने वाले चार पा
अध-देवताओ के नाम लिए। यकीन दिलाने के लिए उसने अपनी जे
से कुछ की जन्म-कुडलिया निकाल ली। फिर हमेशा की तरह मे
जन्म कुडली मागी। मैंने कहा, 'मुझे खेद है कि मैं अभी मुस्तकि
ज्योतिषी पालने वाले इनकम-ग्रुप मे नही हू। जरूरत पड़ने पर फु
पाथ पर हाथ देखने वाला या चिड़िया के सहारे भाग्य बताने वालो
काम चला लेता हू।

"इससे क्या? आप कुडली तो लाइए।"

मैं विनम्रता से कहता रहा, 'ज्योतिषी तो आगे की बात है,
अभी कोई बाबा तक नही पाल पाया हू।

'पर इससे क्या?"

तब तक एक पत्रकार मित्र ने कहा, "दूसरी खेद की बात यह है
कि आपको आज मैं बियर नही पिला सकता। मेरी जेब खाली है।"

"ह ह-हें, ऐसी भी क्या।' कहते-कहते उन्होंने जन्म-कुडलिया
लपेटनी शुरू कर दी। देखते देखते उत्तर प्रदेश के कुछ कर्णधारो के
भाग्य सिमटकर एक गदे पतलून की जेब म घुस गए। सिगरेटो के
आदान प्रदान के बाद हम फिर गर्भवती स्त्रियो की तरह अपनी राह
पर लुढ़कने लगे। हमारे साथी ज्योतिष का मजाक उडाने लगे। पर
राजधानी मे ज्योतिषियो और बाबाओ के बढते हुए आतक का मैं
मजाक नही उडा पाया। मुझे रासपुटिन के रूप की याद आ गई। पर
बात को मोड देने के लिए मैंने बात वहीं पर छोड दी।

पास की इमारत म एक ग्रामोफोन रिकार्ड भाय भाय बजा।
उसने बताया कि हम चीनियों को मारकर भगा देंगे। हमे याद पड़ा
कि स्थिति सकटकालीन है। अकस्मात् हम सब लोग एक पान की
दूकान की ओर बढ गए। एक नौकरीपेशा आदमी कई बार की कही हुई

बात कह रहा था "ऐसी नौकरी के मुकाबले पान की दूकान रखी होती तो ।'

"तो अब तक पान बेच रहे होते।" मेरे एक साथी ने कहा।

किसी ने खबर दी, "परसा अली अकबर खां का सरोद वादन होगा।"

"लखनऊ मे ?" मैंने ताज्जुब से पूछा।

थोडी देर मे मेरे एक मित्र ने कहा कि शाम जवान हो रही है। वास्तव मे ऐसी बातचीत अनुवाद मात्र जान पड़ती है, पर चूकि हम खुद अनुवाद मात्र हो रहे थे इसलिए मुझे यह बात बडी वास्तविक जान पडी। पैदल चलना छोडकर हमने मोटर का सहारा लिया।

खुली सडक पर एक पार्क के सामने एक अस्थायी रेस्त्रां खुला था। फुटपाथ पर कुर्सिया पडी थी और लोग आइसक्रीम खा रहे थे। हम मोटर से नीचे नही उतरे, बल्कि वही ठडा सोडा और गिलास मगा लिए। इतमीनान से बठे हुए हम लोग पार्क मे खडी गाधीजी की प्रतिमा, नयी कार, चीनियो के आक्रमण और शराब के विज्ञापनों की हवा मे अपने अपने फेफडो की हैसियत से सास लेते रहे। भगवती-चरण वर्मा अमृतलाल नागर और यशपाल पर बातें होती रही। बीच-बीच मे राजनीति की टुच्ची समस्याए आती रही, जाती रही। अपने हिसाब से वातावरण बौद्धिक हो गया।

इस समय हम लोग तीन रह गए थे। हम सभी निरुद्देश्य थे और हमारी सबसे बडी समस्या ढेर से समय की थी। लगभग आध घटे बाद हम आगे बढे। हम एक घनी बस्ती के बीच से निकले जहां कुछ दिन पहले, दिन-दहाडे एक आदमी मार डाला गया था। किसी ने पुलिस को टेलीफोन करने की बात सोची तो टेलीफोन के मालिक ने मारे डर के मना कर दिया। बस, दिन दहाडे बाजार मे किसी का मारा जाना किसी दुर्व्यवस्था का चिह्न नही, यह केवल दुस्साहस का चिह्न है। हत्या करने के लिए (और नेता बनने के लिए) दुस्साहस के सिवा और चाहिए ही क्या ? करने भर स ही आप करने के मामले मे काबिल मान लिए जाएग।

हम भड़भूजों, छोटे दूकानदारों, कुंजड़ों और बिसातियों से भरे-पूरे जनसाधारण वाले बाजार से होकर एक ऐसे होटल के सामने से गुजरे जो उस इलाके के लिए बड़ा शानदार और हमारी वर्गभेद वाली निगाह में घटिया था। होटल के अंदर जाकर हम लोग एक बड़े से कमरे में पहुंचे जिसकी दीवारों का गहरा रोगन मुरझा गया था। फर्श पर संगमरमर का नकली काम था। चारों तरफ सस्ते बार का वातावरण था। हम लोगों ने कॉफी मंगाई। अंडरवियर पहने हुए एक वेटर ने ताज्जुब से हमें देखा, फिर बहुत सोच विचारकर बोला, "अच्छा, देखिए देखते हैं।'

एक आदमी हाथ में गिलास लिए हुए आया और हमारी मेज के पास खड़ा होकर मुझे घूरता रहा। फिर बोला, "तुम कौन हो ?"

यह आदमी पुराने लखनऊ का था, जिसके साथ पौष्टिक दवाओं, कुछ सेकेंड हैंड यादों, घिसी पिटी गजलों और गंडे तावीजों की हवा बंधी थी। मैंने इज्जत के साथ उसे बताया, "मैं लेखक हूं।"

उसने आंख मिल मिलाकर कहा, "शायरी करते हो ?"

"नहीं, पर चाहूं तो कर सकता हूं।'

वह थोड़ी देर मुझे घूरता रहा। फिर बोला, "पर वैसे दिखते नहीं हो।'

'यह रोज दाढ़ी बनाने और नहाने का नतीजा है।"

उसके चेहरे से लगा कि मैं उसकी निगाह में गिर गया। एक कोने की ओर इशारा करके उसने मुझसे पूछा, "इन्हें जानते हो ? वे जमाने के उस्ताद हैं।'

बात सच थी। हमारे नजदीक के कोने में अपने जमाने के एक बड़े प्रसिद्ध तबला वादक बैठे हुए दारू पी रहे थे। साथ में दो एक लोग थे जो उसी तरह के पेशा के रहे होंगे। वे पीते हुए जमाने को लानत भेज रहे थे कि खजड़ी बजाने वाले भी आर्केस्ट्रा तबल्ची में शुमार किए जाते हैं, यहां तो वही कलाकार हैं जिसे ऑल इंडिया रेडियो मानता है।

लोगों ने अफसोस के साथ उनसे सहमति प्रकट की।

व दुखा थ। शायद कलाकारो की राजकीय मान्यता के सिलसिले में, या जैसे भी हो, इशा और गालिब का जिक्र आ गया था। मैं सोच ही रहा था कि मेरे बोलने का वक्त आ रहा है, तभी अचानक बुजुर्ग उस्ताद ने बिना किसी प्रोत्साहन के कान पर हाथ रखकर एक गजल छेड दी। दो चार लोग उसे दोहराने लगे। उनकी पुरानी आवाज साफ सुथरी और सधी हुई थी पर ऊचे स्वरो पर जाकर वही टिक गई थी। उसके कारण वातावरण बडा उल्लासपूर्ण होता जा रहा था, हालांकि गजल का कुल मिलाकर मतलब यह था कि हम बरबाद हो गए। मेरी तबीयत गिर गई। मुझे याद आया, बहुत देर हो गई है। हमने जल्दबाजी दिखानी चाही तो हमे बताया गया कि यहा काफी नही मिल सकती।

हम बाहर निकले। सडकें वीरान होने लगी थीं। हम घनी बस्तियो से निकल रहे थे। एक ओर अमीनाबाद, मौलवीगज अशर्फाबाद चौक, नख्खास वाला लखनऊ था जो मुह ढापे पडा था। एकाध छोकर, कुछ बुर्केवाली औरतें मरियल घोडे और हिलते हुए तांगे तबोलियो की दूकानें हलवाइयो की भट्टिया, कुजडो द्वारा फेंके गए गोभी और मूली के सडते हुए पत्ते—उधर का लखनऊ कुल इतना रह गया था।

इस पर एक नया भविष्य हमलावर हो रहा था। यह नया भविष्य नयी पीढी का हो ऐसी बात नही। वह मजबूती स कुछ होशियार, पुराने हाथो की मुट्ठियो मे जकडा था। पर वे हाथ हमारे चिर परिचित हाथ न थे। चुस्त सलवारो ऊलजलूल बालो और खुली हुई रोमहीन बगलो वाली लडकिया और ड्रेन-पाइप पतलून और ढीली कमीज पहनने वाले लडके इस भविष्य को हथियाने का सपना भर देख रहे होंगे। पर वह ऐम्बैसेडर कार के अदर बठकर हनुमान मंदिर के पास जिन पीने वालो और हजरतगज के रेस्त्रा के अदर सस्ती थालो मे अहिंसावादी खाना खाने वालों के हाथ म चला गया था।

हजरतगज आते आते मैं मेफेयर सिनमा के सामने मोटर से उतर गया। मैं टहलना चाहता था और रोमांटिक हो गया था। मैं सोच

रहा था कि आत्महत्या करने के बाद अगर किसी तरकीब से मैं लोगों की प्रतिक्रियाएं जान सकता तो एक बार जरूर आत्महत्या करता।

अकेले टहलते टहलते मैं एक ऐसी जगह पहुंचा जहां बियर का एक अनिवार्य विज्ञापन मेरी आंखों में चुभने लगा। ग्यारह के ऊपर बज चुका था। एक लड़की विज्ञापन के खम्भे के सहारे खड़ी हुई इधर-उधर देख रही थी। दूर से ही पुरानी हवेलियों, आवारा लड़कों और जीविकाहीन बुजुर्गों वाले किसी खानदान का सहारा दिखती थी।

मुझे अपनी एक 'माया' छाप कहानी याद आई, जिसमें सड़क पर घूमने वाली एक वेश्या भाई की बीमारी की बात चलाकर पैसे के सवाल पर आती है। वह पहले बताती है कि मेरा एक भाई मेडिकल कालिज में बीमार पड़ा है।

खम्भे के पास खड़ी हुई लड़की की आवाज ने मुझे चौंकाया उसने मुझसे टाइम पूछा था। मैंने कहा ग्यारह बजकर पचीस मिनट। फिर न जाने कैसे मैंने उससे अचानक सवाल किया, 'तुम्हारा कोई भाई क्या मेडिकल कालिज में बीमार है ?"

'आपको कैसे मालूम ?' उसने कुछ रुककर कहा। उसकी आवाज में विश्वमन्नी का संदेश था।

जवाब में पहेली सा बुझाते हुए विलायती स्टाइल में मैंने कंधे मचकाए और बिना कोई बात कहे टहलता हुआ आगे बढ़ गया। बिजली के खम्भों की रोशनी में फैली हुई, एक दूसरे को काटती हुई अपनी परछाइयों को कुचलता हुआ मैं एक परछाईं सा ही धीरे धीरे अपने घर की ओर चलता रहा।

लखनऊ का एक चौंकितापूर्ण दिन खत्म हुआ।

रवीन्द्र जन्मशती की रिपोर्ट

स्थान—छगामाल विद्यालय इटर कॉलिज, ग्राम शिवपालगज, जिला लखनऊ (उत्तर प्रदेश)।

मुख्य पात्र—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—हमारी श्रद्धा और इस कहानी की दया के पात्र।

वैद्य जी जो देहाती लडके खेता, कारखानो और जेला से बाहर थे उन्हें खदेडकर कॉलिज में ले जाने वाले समाज सुधारक राजनीतिक कार्यकर्ता, अत साहित्यिक समारोहा के अग्रणी। कॉलिज के मैनेजर।

बाबू हरिहरदास कॉलिज कमेटी के सदस्य। स्थायी रूप से उत्साह और ताटी मे डूबे हुए।

प्रिंसिपल कॉलिज की इमारत बनवाने के लिए मजदूरों के ऊपर लगाया गया हैड मेट जो सयोगवश पढ लिख लेता था।

खन्ना / मालवीय कालिज के लेक्चरर। कला कला के लिए के आधार पर चलने वाले प्रिंसिपल विरोधी अभियान के अगुवा।

रुप्पन बाबू वद्यजी के पुत्र। कॉलेज के चिरस्थायी छात्र। विद्यार्थियों के लीडर। अध्यापकों के सहज शत्रु।

बाबू हरिहरदास आज सबेरे से ही ताड़ी पीकर एक साहित्यिक व्याख्यान देने की हालत में पहुंच गए थे। व्याख्यान का विषय 'मुख्य अतिथि का स्वागत करना' था। मुख्य अतिथि जिला विद्यालय निरीक्षक थे जो किसी भी कॉलेज में पहुंचते ही मुख्य अतिथि बन जाते थे। बाबू हरिहरदास कह रहे थे

"भाई मेरे, हम सब जानते हैं कि रवींद्रनाथ ठाकुर कितने महान् कवि थे। ठाकुरों का काम तलवार चलाना है, मातृभूमि की रक्षा करना है। पर वे एक ठाकुर थे जो कलम के जोर से वही काम कर दिखाते रहे जो महाराणा प्रताप तलवार की नोक से दिखाते थे। उन्होंने ऐसी-ऐसी वीरतापूर्ण कविताएं लिखीं कि लिखते तो वे इंडिया में थे पर उन्हें पढ़कर लोगों को इंग्लैंड तक में जोश आ जाता था। आज उनको मरे हुए सौ वर्ष पूरे हुए, पर हमारे लिए वे आज भी ज़िंदा हैं।"

रुप्पन बाबू धोती के छोर को गले के चारों ओर लपेटे मास्टरों के साथ एक किनारे खड़े थे। उन दिनों शिवपालगंज के गुंडों में गले के चारों ओर रूमाल बांधने का फैशन था। यह उसी का नतीजा था। सबेरे से ही उन्होंने भंग पी ली थी। हरिहरदास की बात सुनकर रुप्पन बाबू खन्ना मास्टर से बोले, 'देखिए मास्टर साहब, इतने बड़े कवि को यह साला जीते जी मारे डाल रहा है।'

न्यायशास्त्रियों का मत है कि जहां-जहां धुआं होता है, वहां-वहां आग होती है और जहां-जहां शामियाना होता है, वहां-वहां जल्सा होता है। इसी शामियाने के एक सिरे के नीचे रवींद्रनाथ ठाकुर के चित्र का उद्घाटन किया गया था। चित्र स्थानीय ड्राइंगमास्टर की उन कला-कृतियों में था जो माडल के रूप में विद्यार्थियों के आगे नकल के लिए नहीं रखी जातीं। अतः इस चित्र में कुछ ऐसी तरकीबें लगाई गई थीं कि उसकी नकल नहीं हो सकती थी। खास तौर से चेहरे के इर्द गिर्द

प्रकाश का जो घेरा बनाया गया था उसमें छोटे बड़े न जाने कितने बुलबुले उठा दिए गए थे। नासमझों की श्रद्धा के छींटे पड़ते पड़ते कई साल का बासी प्रभात पुरुष ग्या था।

मानवता के स्तर पर रवीन्द्रनाथ अपने समन्वयवाद के लिए मशहूर हैं। शायद इसी से ड्राइंग मास्टर ने इस चित्र में कुछ ऐसा समन्वय दिखाया था कि वह एक साथ मार्क्स, बर्नार्ड शा और टाल्स्टाय की भी तस्वीर हो सकती थी। उन्होंने सुन रखा था कि वे एक बड़े ही भावुक कवि थे। अतः इस तस्वीर की आखों में एक ऐसी अलौकिक भंगिमा थी कि खुद खाने के साथ ही साथ ड्राइंग मास्टर ने कविगुरु को भी अफीम की एक गोली खिला दी थी। पर कुल मिलाकर यह तस्वीर बुरी न थी। गांधी नेहरू की हजारों चित्र विचित्र तस्वीरें तम्बोलियों की दुकानों पर लटकी रहती हैं और उनमें बहुतों की मुद्रा ऐसी होती है कि उनका बड़ा-से बड़ा विरोधी भी पिघल जाता है। यह तस्वीर भी उसी दर्जे की थी।

हरिहरदास का व्याख्यान चल रहा था। शामियाने के नीचे इतनी भीड़ थी कि बात बात पर हर कोने में तिल का ताड़ खड़ा हो जाता था पर कहीं तिल नहीं रखा जा सकता था। स्कूल के सब लड़के पढ़ाई की क्लास से छूटकर स्वेच्छापूर्वक मौजूद थे। साथ ही और लड़के भी यहां आ गए थे जो आसपास के बागों में दिन भर जुआ खेलते, अपने मवेशी दूसरों के खेतों में चरने के लिए छोड़कर पेड़ों की छांह में निर्द्वन्द्व सोते या तहसील थाने पर नौकरी लगने के लालच में हाकिमों के घर बेगार करते। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तस्वीर की बगल में तनी हुई मेज और उसके पीछे कुर्सियां थीं। हरे नीले रंगों का चक्षुभेदी मेजपोश विकास खंड की ग्राम सेविकाओं के हाथों सवारे हुए कागजी फूलों वाले गुलदस्ते सिगरेट की पन्नी की झिलमिलाहट शान्तिनिकेतन को अभी बहुत कुछ सीखना बाकी था।

बीच की कुर्सी पर खद्दर की चमचम बालाबन्दी वास्कट पहने जिला विद्यालय निरीक्षक बैठे थे। वे जानते थे कि कल किसी हिन्दी अखबार में इस जलसे का वर्णन आएगा उनका नाम छपेगा। वे इसी से प्रसन्न थे।

उनकी बगल मे एक ओर बाबू हरिहरदास और दूसरी ओर वैद्य जी बैठे थे। प्रिंसिपल साहब मच के नीचे दौड़-दौड़कर अरदली का काम कर रहे थे। विद्यालय निरीक्षक का अरदली एक किनारे बैठा हुआ दार्शनिक भाव से बीड़ी फूक रहा था।

हरिहरदास का व्याख्यान देते देते गला रुध गया था। लड़को ने सहर्ष तालिया पीटी। शामियाने मे कुत्ते और बिल्लियों की आवाजें गजने लगीं। तब प्रिंसिपल साहब ने खडे होकर पाच मिनट तक लड़को को अपना अनिवार्य व्याख्यान सुनाया डिसिप्लिन पर। मास्टर लोग दौड़-दौड़कर अपनी तैनाती की गुम्टी पर पहुच गए और लडको को शात करने के लिए हाथ पर जोडने लगे। खन्ना मास्टर ने रुप्पन बाबू से प्रार्थना की "रुप्पन बाबू, प्रिंसिपल मुझे ही ताक रहा है। कहेगा कि मैंने शोर बद करने की कोशिश नहीं की। मेरी सहायता कीजिए। अपने साथियो को चुप कराइए।"

धूप और भय की गर्मी से रुप्पन बाबू पसीजे। बोले, 'आप क्यों परेशान हैं? शोर बढता रहा तो इस्पेक्टर तो प्रिंसिपल की गरदन पकड़ेगा। आप के बाप का क्या जाता है?"

विद्यार्थी नेता से अपने लिए यह रक्षा वाक्य सुनकर खन्ना मास्टर सोचने लगे। रुप्पन बाबू बोले, "अग्रेजी पढाना एक बात है पालिटिक्स सिखाना कुछ और ही चीज है। अभी इसे सीखिए।"

शोर अपने आप कुछ कम हो चला था। बाबू हरिहरदास अब फिर बताने लगे थे कि रवीन्द्र जयती के इस अवसर पर सबमे महत्त्वपूर्ण घटना यह घटी है कि जिला विद्यालय निरीक्षक का कॉलिज मे पदार्पण हुआ है इस्पेक्टर साहब हमारे कॉलेज के हित के लिए कायदा कानून कुछ नही देखते। व हमारे लिए हर मौके पर जवामर्दी दिखाते हैं। उन्होंने इस कालिज को बनाया है। मैंने सुना है कि आज कुछ अध्यापक यहाँ प्रिंसिपल के खिलाफ गुटबदी कर रहे हैं। इस्पेक्टर साहब की निगाह इन सब बातो पर है। सावधान देश द्रोहियो, तुम्हारी कुचालो पर हम सब की नजर है।'

यह कहकर बाबू हरिहरदास ने मास्टरो को इस तरह ललकारा

जैसे हम लोग बैठे हुए चीन-पाकिस्तान जमन जापान अरब ईरान सभी को ललकारा करते हैं। लडको ने फिर कुत्ते बिल्लियो की एक अदृश्य फौज शामियान के नीचे छोड दी। काफी देर गोल-माल रहा, बडा मजा आया। हरिहरदास ने आखिर में कहा, "उन्ही इस्पेक्टर साहब का आज की सभा का सभापति बनाकर हम कृताथ हुए हैं।" पर उनकी यह बात इस्पेक्टर नही सुन पाए, बिल्कुल सामने बठे लडको म भी काई-काई कुत्ते बिल्ली की आवाज निकालने लगे थ।

अग्रेजी मे एक कहावत है, बढिया शुरुआत का अथ है कि आधा काम हो गया। यहा हरिहरदास के व्याख्यान का इतना बढिया असर पडा कि लगा रवीन्द्र शताब्दी का जलसा इस शुरुआत से पूरा का पूरा खत्म हो जाएगा। पर लडको के असहयोग स वह पूरा नहीं खत्म हुआ। उनका मनोरजन अभी कुछ बाकी था। इसीलिए उन्हाने आशा के विपरीत चीखना कम कर दिया और शोर अपने आप कम हो गया।

इसके बाद ब्लॉक पर काम करने वाली एक महिला अधिकारी ने दो तीन लडकियो को खीचतान कर उनसे रवीन्द्रनाथ का एक गीत गवाया। जितने लोग मौजूद थे उन्होंने यह समझा कि यह गीत बगला मे है। कोई बगाली होता तो समझता कि गीत गुजराती मे है। अर्थात गीत किसी की समझ मे नही आया और अपनी न समझ में आन वाली खूबी के कारण वह एकदम से सावभौमिक हो गया।

एक स्थानीय कीतन कलाविद ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर का लिखा हुआ एक भावपूर्ण भजन गाया। वे ओकारनाथ ठाकुर के पोज मे पैर बगल की आर फैलाकर शेरबच्चा स्टाइल म बठ गए और भजन गाने लगे। उनकी सिकुडी हुई भौहें और रोनी मुद्रा, आसमान की आर बार-बार उठन वाली आखें देखकर सबको यकीन हा गया कि भजन बडा करुण और भावपूर्ण है। एक हाथ की हथेली को चम्मच जसा बनाकर दूसरी हथेली का ढक्कन की तरह स रखने की तैयारी मे बठे हुए वे अपना भजन गात रहे। लगता था जसे कोई मुर्गी उनके हाथ स निकल गई है और वे दोना हाथो से उसकी मोटी-ताजी याद पकडे बठे हैं। लोग भाव विभोर हो गए। लडकों न भी मुर्गी की याद म कुकडू-कू करना

शुरू कर दिया। इतना शोर मचा कि भजन के अंतिम चरण का पेटेंट माल—मीरा प्रभु गिरिधर नागर—सुनाई ही नहीं दिया और बहुत से लोग इसी प्रारंभिक सूचना के अनुसार अपने घर वापस गए कि उन्होंने रवीन्द्रनाथ का भजन सुना है।

इसके बाद कॉलेज के कलर्क साहब ने एक उर्दू की कविता सुनाई। कविता के मामले में वे हमेशा से बेतकल्लुफ थे और जहाँ से कोई कविता पसन्द आई वे उसे अपनाए बिना न रह पाते थे। इस समय भी उन्होंने दो-चार पुरानी कविताओं को एक में मिलाकर एक मौसमी चीज तैयार कर दी थी।

यह वास्तव में एक कसीदा था जिसका तात्पर्य यह था कि आज अचानक फूल क्यों खिल रहे हैं, दिल क्यों धड़क रहे हैं, और गुलगुंचे पर परिन्दे क्यों चहक रहे हैं, हवा क्यों इठलाती हुई बह रही है और ये काली घटाएँ क्यों मुस्कराती हुई चली आ रही हैं? इसी तरह के दस बीस फर्जी सवाल करके बाद में बताया गया था कि यह सब इसलिए हो रहा है कि आज हमारे कॉलेज में जनाब इंस्पेक्टर साहब बहादुर तशरीफ लाए हैं।

रवीन्द्रनाथ की इस सांकेतिक अभ्यर्थना के बाद संस्कृत के पंडित जी ने गीतांजलि पर एक प्रवचन देना शुरू किया।

उन्होंने एक बड़ी गोपनीय खबर दी कि भारत सदा ही धर्मप्राण रहा है, और उसका प्रमाण यह है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर तक ने गीतांजलि लिखा है। वे गीता के बारे में लगभग पन्द्रह मिनट बोलते रहे और बाद में इस निश्चय पर पहुँचे कि गीता गीता है और गीतांजलि गीतांजलि है पर जो गीता में है वही गीतांजलि में भी है।

वह पण्डित ही क्या जो हर बात को तोड़ अद्वैतवाद पर लाकर न छोड़े। इसलिए उन्होंने इसी बात को बढ़ाकर कहा कि और वही ब्रह्म में है वही भूत में है, वही जल में है, थल में, अनिल-अनल में है। यह अद्वैतवाद है, इसी को रहस्यवाद कहते हैं और चूँकि रवीन्द्रनाथ ने इसी पर कविता लिखी है, इसलिए वे रहस्यवादी हैं।

तालियों और भों भों, म्याव-म्याव, ची ची का फिर से एक नया दौर चला।

संस्कृत के पंडितजी अब सिनेमा के किसी गाने का गलत उद्धरण देकर कह रहे थे कि हिंदी में अब ऐसी ही कविता हो रही है 'चसमबद्दूऽऽऽ चसमबद्दूऽऽऽ' जब कि ठाकुर साहब ने ऐसी ऐसी धार्मिक कविताएं लिखी है, जैसे अंतर मम विकसित करो। तभी पंडाल के एक कोने में सचमुच ही एक गाना होने लगा, 'चश्मे बद्दूऽऽऽ र'।

तब वैद्यजी लडको को शांत कराने के लिए खड़े हो गए। उनके लाल लाल स्वस्थ चेहरे को देखकर लडको ने उल्लासपूर्वक सीटियां बजाई।

इस मौके पर खन्ना मास्टर प्रिंसिपल साहब के पास आकर खड़े हो गए। बोले, "मालवीयजी ने रवीन्द्रनाथ पर एक निबंध लिखा है उसे सुनाना चाहते हैं।"

प्रिंसिपल साहब ने चिढकर खन्ना को देखा, कहा, "कैसा निबंध? यह रवीन्द्रनाथ पर निबंध सुनाने का मौका है?"

मौका तो यही है। नहीं तो क्या ऐसी बातें क्लास रूम में की जाएगी।'

प्रिंसिपल ने चारों ओर निगाह डाली। सीटियों की आवाज कम हो गई थी। वैद्यजी अपनी थियेटरी आवाज में नौटंकी जैसा गा गाकर रवीन्द्रनाथ पर राजनीतिज्ञों वाला व्याख्यान देने लगे थे 'देश में उन्नति करने के लिए सिर्फ रुपये की ही आवश्यकता नहीं। कला और साहित्य की भी उन्नति होनी चाहिए।

खन्ना ने उधर अपनी बात दोहराई, तो मालवीय साहब अपना निबंध पढ़ दें?

प्रिंसिपल ने दांत पीसकर कहा 'पालिटिक्स! जब देखो तब पालिटिक्स! भैया तुम काजी हो कि मुल्ला? तुम काहे दुनिया भर का बोझ सिर पर लिए घूम रहे हो? मालवीय को क्या लकवा मार गया है। वे खुद क्यों नहीं कहते? जहां देखो वहीं गुटबंदी। किसी को लेख पढ़ना है तो वह भी खन्ना साहब की मार्फत बात करता है। हुंह!"

खन्ना ने कहा, 'मेरे कुछ बोलने से ही आपको खुजली लगती है तो मैं जाता हू। मालवीय को ही भेजे देता हू।"

प्रिंसिपल की छाती तन गई। हाथ हाफपैंट की जेबो मे पहुच गए। बास की तरह लपलपाते हुए उन्होंने खन्ना का रास्ता रोक लिया। कहने लगे, 'मालवीय तो मालवीय, मालवीय के बाप भी उतर आवें तो यहा उनका लेख नही पढा जाएगा। यह साहित्यिक सभा है, कोई धाबियो की पचायत नहीं है।"

"साहित्य?" खन्ना ने कहा, 'आप मजदूरो के साथ बैठकर कॉलेज का छप्पर छवाइए। आप अपने मुह से यह लफ्ज क्यो निकालते है?'

लडको का शोर बद हो गया था और वैद्यजी रवीन्द्रनाथ, गाधी, नेहरू, इस्पेक्टर आफ स्कूल्स, हरिहरदास, शिक्षामत्री, प्रिंसिपल, जिला कमेटी के अध्यक्ष—इन सब पर बारी-बारी से अपनी प्रशसा का एक-एक वाक्य गिराते हुए ब्रह्मचर्य पर आ गए थे, रवीन्द्रनाथ के मुख पर कैसा तेज था, इसकी याद दिलाने लगे थे।

प्रिंसिपल ने आवाज को दबाकर दात के नीचे दात घिसते हुए कहा, 'खन्ना, इसी कॉलेज मे तुम्हारे अदर भूसा न भर दिया तो कहना। किए जाओ दलबदी।'

एक सज्जन छापेदार बुशर्ट और पैंट पहने, पान खाए, चश्मा लगाए, लडकियो की ओर निगाह केंद्रित किए वहा आकर खडे हो गए। खन्ना ने कहा, 'भाई मालवीय, आपका निबध यहा नही पढा जाएगा।'

मालवीय प्रिंसिपल की ओर देखने लगे। प्रिंसिपल ने समझाते हुए कहा, 'अच्छा है। आपने निबध लिखा, उससे मुझे खुशी हुई। अपना अध्यापन छोडकर आप लेख लिखते हैं तो क्या हुआ, दूसरे मास्टर उसी वक्त रटकर दलबदी करते है, ताश खेलते हैं। आप लेख लिखते हैं, इसमे बुरा क्या है?"

प्रिंसिपल साहब या बात रखते रहे जैसे मालवीय लेख लिख लेने की ग्लानि मे आत्महत्या करके मर जाने वाले हो और उनकी सात्वना के ही कारण अब तक क्षमा करने मे रुके हुए हों। उन्होंने कहा, "पर ।'

"पर मैं पर वर नहीं जानता। यह तुम्हारे निबंध का समय नहीं है। वडजी बोल रहे हैं।"

'पर पर, यहां कुछ तो होना चाहिए। रवीन्द्रनाथ पर एक भी निबंध नहीं पढ़ा गया!"

"और हो क्या रहा है? कान में रुई खोंस ली है क्या?" प्रिंसिपल बोले, 'कलकत्ता दिल्ली-इलाहाबाद—जहां देखो वहां रवीन्द्र जयंती इसी तरह तो मनायी जा रही है। बड़े-बड़े नेता, मिनिस्टर, हाकिम सभी अपनी-अपनी श्रद्धांजलि दे रहे हैं। तुम्हारे जसे साहित्यिक निबंध कौन पढ रहा है? यहां भी अब टाइम कहा है? आधा घंटे बाद इंस्पेक्टर साहब को उठना है। उनका लेक्चर अभी पड़ा ही है।

अपनी चतुरता पर खुश होते हुए प्रिंसिपल साहब ने अंत में कहा 'मौका समझो मालवीय। अक्ल बड़ी कि भैंस? अपना निबंध जेब में रख लो।'

छायावादी कविता का सत निकालकर जो आह बनाई गई है, उसे मुंह में खींचकर मालवीयजी चुप हो गए। कुंठित होकर उन्होंने फिर उसी ओर टकटकी बांध ली जहां चार-छः लड़कियां निगाह नीची किए बैठी थी और सारी दुनिया को बदमाश समझ रही थी।

एक शोक-प्रस्ताव

लखनऊ
२७ फरवरी, १९६६

मित्र,

कल ही मैंने एक मासिक पत्रिका में तुम्हारे शहर की एक शोक सभा का वर्णन पढ़ा है, सचित्र और कार्यपूर्ण। यह जानकर संतोष हुआ कि दिवंगत प्रधानमंत्री के शोक में की गई इस सभा की अध्यक्षता तुमने की, और बाबू रामाधार टापते रह गए। तुम्हारे व्याख्यान में दिवंगत नेता के लिए दी गई उपमाएं पुरानी होते हुए भी काफी चुस्त थीं, खास तौर से वह सूरज और कोहरे वाली उपमा। उस मौके पर पढ़ी गई कविताओं में कुछ बहुत ही उम्दा थीं, एक तो बिल्कुल वैसी थी, जैसी कि अभी हाल में आकाशवाणी के एक शोकपूर्ण कवि-सम्मेलन में एक कवि ने—प्लेबैक सिंगर मुहम्मद रफ़ी को पछाड़कर—गायी थी।

तुम्हें इस तरह की लगभग डेढ़ सौ सभाओं में जाना पड़ा और कहीं बाबू रामाधार अध्यक्ष न बन जाएं, इसलिए खुद उनकी अध्यक्षता करनी पड़ी। मैं तुम्हारा शोक समझता हूं। इधर अपने शहर में उन्हीं दिनों मुझे भी एक शोक-सभा में शामिल होना पड़ा था। उसकी

रिपोर्ट मैं दे रहा हू। इसे पढकर बताना, क्या तुम भी मेरा शोक समझ सकते हो ?

पिछले साल तुमने करुणाशकर दफेदार की एक पेंटिंग खरीदी थी। वह दफेदार अब नही है, जिन दिनो तुम शोक सभाओं के कार्य-क्रम म जुटे थे, वह यहा एक कार-दुघटना में मर गया। हम बुद्धि जीवियो को इस पर बडा अफसोस हुआ और हमने तय किया कि इस महान कलाकार की मौत पर हम एक शोक-सभा करेंगे।

दिन का तीसरा पहर। हम लोग कॉफी हाउस के सामने एक पाक मे मिले जो कुछ बदनाम सा था। उसमे ज्यादातर लोग छिपकर प्रेम और लघुशका करने को जाते थे। हमारे एक दोस्त ने वहां शोक-सभा करने पर ऐतराज भी किया, पर मैंने समझाया कि भावना सच्ची हो तो कोई भी जगह किसी भी काम के लिए अच्छी है। देखो पब्लिक लाइब्रेरी मे अब सिफ लडके-लडकिया 'डेटिंग के लिए जाते हैं, दफ्तरों मे लोग काफी हाउस चलाते हैं, कॉफी हाउस मे लोग ।

हम कई अदद चित्रकार, साहित्यकार, पत्रकार और यूनिवर्सिटी वाले थे। वैरायटी के लिए दो अफसर, तीन नेता, एक दूकानदार (कॉफी हाउस का मनेजर) और दो श्रमिक (वही के दो बैरे) भी थे। जाडे की धूप दिन का तीसरा पहर और लहलहाते अग्रेजी फूल, जिनका नाम भर गिना दो तो देसी भाषाओं की एक कहानी बन जाए। शोक सभा शुरू हुई। हम भरे हृदय और पेट के साथ दरी पर बैठे।

भाइयो और बहिनो!' अध्यक्ष ने कहा।

बहिना म अतिशयोक्ति थी क्योकि वहा सिर्फ एक औरत थी।

'भाइयो और बहिनो आज हम एक महान् शोक की छाया में इकटठे हुए हैं। हमारे प्रिय नेता स्व० प्रधानमत्री ।'

अध्यक्ष के बारे मे अफवाह थी कि उसने किसानो के लिए एक सस्ती सीड-ड्रिल ईजाद की है। वह खेती के उन्नतिशील औजार सरकारी अफसरो की माफत किसानो मे बेचता था। पर उसका यह पेशा सिफ बहाना था, वास्तव मे वह एम०एल०सी० था, पर उसका वह पेशा भी सिफ बहाना था, क्योकि वह राज्य की ललित कला

अकादमी का सदस्य और उसकी चित्र खरीद-कमेटी का कन्वीनर था। कुल मिलाकर दो ठिगने पावों पर खड़ी हुई एक बहुधंधी योजना।

व्यापार के वक्त वह खादी का कुर्ता पायजामा पहनता। विधान-परिषद में टेरिलीन का सूट। इस वक्त वह शेरवानी पहने था, और छाती पर लाल गुलाब की एक कली लगाए था।

" उनके आकस्मिक देहावसान से आज सारा देश शोकमय है। वे हमारे महान राष्ट्रनायक थे ।'

मैंने उसके कान मे धीरे से कहा, "करुणाशकर दफेदार मर गया है। यह उसकी शोक-सभा है, प्रधानमत्री की नही।"

उसने सिर हिलाकर मुझे यकीन दिलाया कि घबराने की जरूरत नहीं।

चूंकि वहा पान नही बटना था इसलिए पहले से ही इतजाम के साथ मुह मे डाला हुआ पान लोग धीरे धीरे चबाने लगे।

'ऐसे शोक के समय हम पर एक और चोट हुई है। आप लोग देश के महान कलाकार श्री करुणाशकर मसबदार को जानते ही हैं ।"

मैंने धीरे से कहा, "मसबदार नही, दफेदार।"

अध्यक्ष की आवाज अब तक हम सबको एक शोक-सभा बना देने की हालत मे आ गई थी। उसने मेरी बात अनसुनी कर दी।

मसबदार नयी पीढी के कलाकारो मे ।'

मैंने उसके कान म दुबारा कहा, "मसबदार नही दफेदार।'

अध्यक्ष के चेहरे पर मेरी बात का कोई विकार नही हुआ। पर उसकी अगली बात से लगा कि उसने मेरी बात सुन ली है।

" तो दफेदार को पहली बार मैंने ललित कला अकादमी के सालाना जलसे म देखा था। तभी मैं जान गया था कि वह एक ऊचे दर्जे का चित्रकार है क्योंकि ।'

'क्योंकि वह दाढी बढाए हुए था', मैंने अपने आपसे कहा।

वह कहता रहा, " क्योंकि उसके हाथ मे एक ऊचे दर्जे का चित्र था ।'

प्रस्तावना खत्म। दूसरे वक्ता को बोलने का मौका मिला। दूसरा

वक्ता कॉफी-हाउस का मैनेजर था। कॉफी-हाउस में दफेदार के साथ एक छत के नीचे वह जितना समय गुजार चुका था, उतना हममें से बहुतों ने अपनी बीवियों के साथ भी नहीं गुजारा होगा। पर मैनेजर ने दफेदार के बारे में बहुत कम बात की, वह चित्रकला की नयी प्रवृत्तियों के बारे में बोलता रहा। तीर्थों के पंडे जिस इत्मीनान से धर्म की बात करते हैं कॉफी हाउस का मैनेजर उसी तरह चित्रकला की बात करता रहा।

धूप और फूल और धीमी हवा। किसी ने ठीक मेरे पीछे बीड़ी पीनी शुरू कर दी और उसका धुआ मेरे सिर के आसपास चक्कर काटने लगा। तुम जानते ही हो बीड़ी को मैं तभी तक बर्दाश्त कर सकता हूं जब तक कि वह जलायी नहीं जाती। मैंने गुस्से में बीड़ी पीने वाले को देखा पर वह सभा में बैठी अकेली औरत को देख रहा था। अचानक मैंने महसूस किया कि ज्यादातर लोग उसी को देख रहे हैं। तीसरा व्याख्यान चलने लगा।

पार्क के पास सड़क पर एक कार आकर रुकी। उसका हार्न बिना रुके काफी देर बजता रहा। मैं पहचान गया। गाड़ी में बैठा हुआ गोल मटोल आदमी यूनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र का लेक्चरर था। विदेशी सहायता का देश पर कुप्रभाव—इस विषय पर वह लेख लिखने में माहिर हो गया था। अभी हाल ही में वह एक विदेशी वजीफे पर यूरोप का चक्कर काटकर लौटा था। वह मेरा एक प्यारा अल्पकालीन दोस्त था और हार्न बजाकर वह शायद मुझे ही अपने पास बुला रहा था।

हॉर्न की आवाज ने शोक सभा में अड़चन डाली, पर ज्यादा नहीं क्योंकि इस समय बोलने वाला मोहरार मोदी और रामधारीसिंह 'दिनकर' की शैली में अपनी कड़ियल आवाज से दफेदार की कार दुर्घटना की तफसील दे रहा था। हॉर्न हार गया। थोड़ी देर में ही मेरा लेक्चरर दोस्त मुझाया हुआ चेहरा लेकर मेरे पास आया और उसने भी अकेली औरत को घूरना शुरू कर दिया।

इस पर अध्यक्ष ने घोषणा कर दी कि अब उसी का भाषण होगा।

एक प्रोफेसर, विचारक, विद्वान ! वह तेजी से जाकर अध्यक्ष के पास बैठ गया और शायद सोचता रहा कि माजरा क्या है। फिर कुछ सोचकर बोला, "आप सब जानते ही हैं, साहित्य समाज का दर्पण है, पर एक तरह से देखा जाए तो खुद समाज साहित्य का दर्पण है।"

उसके मुंह से बेमौसम 'समाज और 'साहित्य' की बात सुनकर मेरा दिल दहल गया। मैं समझ गया कि वह शराब के नशे में धुत है। मैंने जाकर अध्यक्ष के कान में कुछ कहा, पर तब तक मेरा दोस्त साहित्य और समाज के बारे में कुछ और बोल गया।

अध्यक्ष ने मेरे दोस्त की बात काटकर लोगों को शान्त रहने का इशारा किया और एक कागज को रुक-रुककर पढ़ते हुए, नयी पीढ़ी के महान् चित्रकार श्री करुणाशंकर मसबदार—'आई एम सॉरी'—दफ्दार के आकस्मिक निधन पर शोक प्रस्ताव पेश किया।

थोड़ी देर में ही हम फिर पहले जैसे थे। हम लॉन पर लेटे हुए मजदूरों को कुचलते, मूंगफली के फले छिलकों पर जूते चरमराते, गुल्दानों पर थूकते हवा में हाथ हिलाते पार्क से बाहर की ओर लपके। अचानक मेरा दोस्त खड़ा हो गया और बोला, "यह फरेब है। फ्रॉड।"

"तुम नशे में हो।" अध्यक्ष ने तीखेपन से कहा।

मेरे दोस्त के माथे पर घाव का निशान था। शराब पीकर, घूसा खाकर, टूटे शीशे पर टूट पड़ने का अमर चिह्न। धूप में वह निशान खासतौर से तमतमा रहा था। वह बोला, "प्रस्ताव में तुमने दो मिनट तक चुप रहने के लिए कहा था। पर तुम लोग सिर्फ पैंतीस सेकंड तक चुप रहे। तुमने दफ्दार के साथ फ्रॉड किया है।"

"तुम नशे में हो।" अध्यक्ष ने भी उसी तरह कहा।

"हो सकता है। पर मैं घड़ी देख रहा था। तुमने लगभग डेढ़ मिनट का फ्रॉड किया है।"

जैसे कोई बाजी जीती हो, इस तरह उसने मेरी ओर देखा और अपनी बात की दाद चाही। अध्यक्ष ने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "ऐसा नहीं है। जमाना बदल गया है। पहले दुःख की घड़ियां काटे नहीं कटती थीं। अब दुःख के दो मिनट भी पैंतीस सेकंड..."

जैसे जान पड़ते हैं।"

दोस्त, साराश यह है, दफेदार अब नही रहा। उसके चित्र को सभालकर रखना। कुछ दिनो मे ही ललित कला अकादमी उसे अमर बनाना चाहेगी और उसके चित्रो के बारे मे पूछताछ शुरू करेगी।

पत्र की प्रतीक्षा करूगा।

तुम्हारा,
श्रीलाल शुक्ल

घुडसरी का कवि-सम्मेलन

जाती थी वहा अब भी बैलगाडी निकल सकती थी। जहा नाला था वहा नाला ही रहा। धीरे धीरे जैसे खेता पर सडक निकली थी वसे ही सडक पर खेत निकल आए। पर गाव, सडक के किनारे का गाव हो गया।

इस कॉलेज में बल्लमटेर महराज के भतीजे प० दसादीन शर्मा प्रिंसिपल बने। जब यह मिडिल स्कूल था वे तभी से इसके हैडमास्टर थे। हाई स्कूल होते होते वे खुद हाई स्कूल पास हो गए। अब कॉलिज हो जाने पर उन्होंने बी० ए० भी पास कर लिया था। वे अकबर की तरह कॉलेज का शासन सिर्फ बुद्धि के सहारे चलाते थे और इसके लिए सारी दुनिया मे मशहूर थे।

इसी कॉलेज मे बाबू रामाधार उर्फ पल्लवजी हिंदी के अध्यापक नियुक्त हुए। वे हिंदी के एम० ए० थे। इसीलिए कवि भी थे। इस लिए उनके मन मे दूसरो को कविता सुनाने की इच्छा भी रहती थी। इसलिए लोग उनसे घबरात थे। इससे वे अकेले रह जाते थे। इस हालत मे वे और भी कविताए लिखते और उन्हे सुनाना चाहते। तब लोग उनसे और भी घबराते। इस तरह फिर वही चक्कर चलने लगता।

इसी बीच विद्यालय निरीक्षक के दो आदेश आए। एक तो यह कि दसादीन शर्मा ट्रेनिंग पास करें नही तो हैडमास्टर न रह सकेंगे और दूसरा यह कि कॉलिज की नाजायज कक्षाए तोड दी जाए। प० दसादीन ने इसका भी हल ढूढ निकाला। उन्होने पल्लव जी से कहा कि विद्यालय निरीक्षक कविता प्रेमी हैं। आगे की बात सुनकर पल्लव जी पल्लवित हुए। नोटिसें छप गईं कि स्कूल का सालाना जलसा होगा जिसमे अलगत खेल-कूद दगल अत्याक्षरी, एकाकी नाटक और अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन होगा जिसका सभापतित्व सुप्रसिद्ध विद्वान डबल एम० ए० पास श्री जनार्दनदास विद्यालय निरीक्षक करेंगे।

सालाना जल्सा सब तरह से कामयाब रहा। मास्टरो और लडको की रस्सा कशी से लेकर प्रिंसिपल के भाषण तक और जोरदार दगल से लेकर बल्लमटेर महराज के हाथों पुरस्कार वितरण तक आनदपूर्वक

निबट गया। गड़बड़ी सिर्फ पिछली रात के नाटक में हुई। एक टिकट कलेक्टर का अभिनय करते हुए एक बुद्धिमान् विद्यार्थी अभिनेता ने इतनी मज़ेदार बातें कहीं कि दर्शकगण हँसते-हँसते दुहरे हो गए और फिर वहीं लोट गए। बार-बार टिकट बाबू के लिए शोर मचने लगा। पर नाटक के बाद प० दसादीन शर्मा ने टिकट बाबू को बुलाकर अश्लीलता के आरोप पर चार बेंत लगाए। जो भी हो, नाटक बड़ा कामयाब रहा और लोग यही कहते हुए वापस गए कि टिकट बाबू ने कमाल कर दिया और ऐसा खेल कहीं नहीं देखा।

अब अंतिम समारोह रह गया, "अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन।"

पल्लवजी को इस सम्मेलन के बहाने कविता सुनने और सुनाने का अपूर्व अवसर मिल रहा था। इसलिए उन्होंने अच्छे से-अच्छे कवि इकट्ठा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उन्होंने स्कूली लड़कों को दूर दूर के कई स्थानों पर भेजा, कई जगह जान-पहचान के सुराग लगाए, कई दूसरे कवियों से अपने साथी कवियों को चिट्ठियाँ लिखाईं, पिछड़े इलाके में साहित्य के प्रसार का लालच दिखाया, अंत में हिंदी-हिंदू हिंदुस्तान का नारा लगाकर त्याग की भीख माँगी और इस प्रकार हिंदी के कई अच्छे-अच्छे कवियों ने आने का आश्वासन पा लिया।

कवियों के रहने के इंतजाम का जिम्मा वॉलंटियर महराज के छोटे भाई रामअजोर ने लिया। कठपुतली का नाच और नौटंकी से लेकर रामलीला तक के इंतजाम का बोझा हर साल भाई रामअजोर ही सँभाला करते थे। कंधे पर लाल अंगोछा डाले, कान पर चूने की गोली रखे, गमछा और बनियाइन पहने, गले में सोने की ताबीज लटकाए, भाँग खाए, नीचे के ओठ और दाँतों के बीच तंबाकू भरे हुए और हथेली पर भी तंबाकू मलते हुए भाई रामअजोर को देखते ही सारी शंकाएँ मिट जाती थीं। यकीन हो जाता था कि ये कोई भी इंतजाम सँभाल सकते हैं। इसलिए जब उन्होंने तम्बाकू की पीक पल्लवजी के पैर के पास थूककर बड़ी लापरवाही के साथ कहा, "सब हो जाएगा पल्लौ जी, आप क्यों लिबिर लिबिर करत हैं।" तो पल्लवजी को यकीन

हो गया कि लिबिर लिबिर करना बिल्कुल बेकार है।

हलवाहो को खेत से बुलाकर भाई रामअजोर ने कवियो के रहने का इतजाम शुरू करा दिया। छप्पर स छाई हुई एक बगलानुमा मरिया थी जिसमे उनकी गाय भसें बधा करती थी। उन्हें हाककर सामने बरगद के पेड के नीचे बधवा लिया गया। सरिया के बाहर खट पट करते हुए घोडे और बछेडो को भी दूर बधवा दिया गया। उनके खूटे उखाड दिए गए। सरिया के भीतर जानवरो के पेशाब और गोबर को साफ करके उस पर पहले राख डाली गई फिर उसे भी बुहारकर पत्तिया बिछा दी गइ। उसके ऊपर ढेर सा पुवाल फैलाकर स्कूल की टाट पट्टिया बिछा दी गइ। सरिया के किनारे किनारे तीन तरफ जानवरों क चारे की नादें एक-दो हाथ की ऊचाई स गडी हुई थी। भूसे, दाने, खली नमक आदि की कई दिन पुरानी मिलावट से गधाता हुआ पानी उलीचकर दूसरी ओर बाहर फिकवा दिया गया। नादो को धुलवाकर पुछवाया गया, फिर उनमे सूखा भूसा भर दिया गया। एक कोने में दो नयी नादें लगाई गई थी, जिनका अभी तक इस्तेमाल नही हुआ था। भाई रामअजोर न एक मे मिट्टी के कुल्हड और पत्तलें रखवा दी और दूसरी म पीने का पानी भरा दिया ताकि इन चीजो के लिए दूर न जाना पडे। इतना कर लेने पर उन्होने पूरी स्थिति पर एक तजुर्बेकार सुपरवाइजर की निगाह डाली और गमछा सभालत हुए तेजी से छप्पर के एक कोने के पास जा पहुचे। हुमक्कर उन्होने उसे कुछ ऊपर उठा दिया। बडी ताकत लग रही है यह दिखाने के लिए दात भीच लिए, फिर वे बडे ताकतवर हैं यह दिखाने के लिए सीना उभारकर आगे फेंक दिया और छप्पर को कुछ ऊचाई पर दो बासो के सहारे खडा कर लिया। फिर एक फूक मे सास छोडकर बोले बुला लाओ पल्लो जी को, वे भी देख लें कि कैसा चमन बना दिया।"

दोपहर के बाद स ही पडोस के गाव के रहनेवाले उजागर शर्मा उस सरिया मे, जिस अब चौपाल कहा जाएगा आकर बठ गए। वे राधेश्याम कथावाचक की कथा हारमोनियम पर गाते थे। थोडी ही दर बाद घुटनो तक धोती चढाए देह पर मिर्जई पहने, सिर पर साफा

गलमुच्छें रखाए, कोदईराम ब्रह्मभट्ट भी वहां आ गए। उन्हें देख उजागर शर्मा हंसे। बोले, "पल्लो जी ने आनंद कर दिया।" उत्तर में कोदईराम ने एक बात कही, 'कुछ कहिए नहीं, बड़ा तिकड़मी है।'

शाम होते-होते दो बैलगाड़ियों में भरे हुए शहर के कई कविगण घुड़सरी आ पहुंचे। गांव के नजदीक आते-आते बैलों ने कड़बड़ कड़बड़ दौड़ना शुरू किया। उनके गले में पड़ी घंटियों की तांबी झनझनाहट, गाड़ीवालों की 'बा बा, का का' और पहियों की खड़खड़ाहट से लोगों को पहले ही मालूम हो गया कि कवि लोग आ गए। हाई स्कूल के लड़कों ने अपना स्कूली बंड बजाना शुरू कर दिया। प्राइमरी स्कूल के लड़के लाइन में खड़े होकर झन झना झन लेजिम भाजने लगे। बछड़े भड़क-भड़ककर खूंटे तुड़ाने लगे। घोड़ा हिनहिनाने लगा, उसका बछेड़ा दुम उठाकर गांव के बाहर सरपट भागा। दो एक हलवाहे चौपाल की ओर दौड़ पड़े। बरगद की जड़ पर बैठे हुए भाई रामअजोर ने खड़े होकर फेफड़ाफोड़ आवाज में पुकारा, "अरे पल्लो जी, मेहमान आ गए।"

कवि लोगों के चेहरे धूल से ढक गए थे। उतरते ही वे अपने कपड़े झाड़ने लगे। होल्डॉल, अटैचियां, कम्बल, झोले बैलगाड़ियों से उतारे जाने लगे। एक हलवाहे ने यह सब सामान चौपाल में ज्वार के गट्ठरों की तरह डालना शुरू किया। इसे देखने के लिए गांव के बेकार के लोगों की भीड़ इकट्ठा हो गई। चना चबाते हुए, ईख चूसते हुए और आपस में चपतबाजी का खेल खेलते हुए लड़कों ने चौपाल का दरवाजा घेर लिया। घर लौटते हुए चरवाह ठिठककर लाठी के सहारे खड़े हो गए। कई काली काली औरतें, काली-काली धोतियां पहने, रेंड़ी के तेल, सेंदूर और काजल की इफरात में अपने आप को डुबाए वहीं आकर बैठ गईं और चिचकिच करने लगीं। भाई रामअजोर ने एक्सपर्ट की निगाह से चारों ओर देखा, फिर भड़ककर भीड़ लगाने वालों से बोले, "चलो भागो, नहीं तो एक-एक की टांगें चीरकर रख दूंगा।" अब कवियों को उनकी ओर मुखातिब होना पड़ा। तब पल्लवजी ने भाई रामअजोर का उनसे परिचय कराया। गमछे को अच्छी तरह कमर पर समेटकर वे पहलवानी चाल से कवियों तक आए और दोनों हाथों

से उनसे हाथ मिलाने लगे।

ईख का रस छानकर उसे गरम किया गया। उसमें दूध मिलाया गया और मटर की घुघनी के साथ कवियों के सामने जलपान में दिया गया। उसके बाद गाय के दो नाइया को कुए के ऊपर लोटे लेकर बठाल दिया गया और हिदायत दी गई कि कवि लोगों के हाथ मुह धुलाने का इतजाम किया जाए।

खाने के वक्त चौपाल म नाद मे उठा उठाकर पत्तल डाल दिए गए और दूसरी नाद से भर भरकर कुल्हडो मे पानी रख दिया गया। अचानक रसोईघर की तरफ कुहराम मचा और पता लग गया कि खाना आ रहा है। रामअजोर के साथ कोई सात आठ मुस्तडे जवान घुटनों तक धोती चढाए चुटिया हिलाते नगे बदन पर जनेऊ फटकारते खाना लेकर इधर से उधर दौडने लगे। एक ने कहा, 'भात' तो चौपाल से लेकर रसोईघर तक 'भात, भात' का नारा लग गया। फिर दूसरे ने कहा, 'दही चल जाए' तो 'दही, दही' की गरज से धुडसरी के आसपास तक सत्तर कोस का इलाका गूज उठा।

उगलियो म लपेट लपेटकर दिया गया दो दो चुल्लू दही और दाल और हाथ स गोला जैसा बना-बनाकर परोसा हुआ भात सामने देखकर कवि लोग पहले तो एक दूसरे के मुह की ओर देखने लगे फिर एक कवि ने भाई रामअजोर स कहा, जरा क्या नाम है उनका, पल्लवजी को बुलाइए।'

भूस से भरी नाद के सहारे अपनी कमर को टिकाकर भाई राम अजोर तिरछे खडे हुए खाने का इतजाम देख रहे थे। उन्होंने पल्लवजी के लिए एक दूसरी फेफडातोड आवाज लगाई और उस कवि के पास आकर पजो के बल बैठते हुए मसलहत के साथ बोले, 'क्या हुआ? बात क्या है?'

कवि ने कुछ दूर बैठी हुई कवियत्री से अग्रेजी में कुछ बात की फिर रामअजोर से कहा मैं और शीलाजी ऐसा खाना नही खाएग।

इस पर भाई रामअजोर ठठाकर हसे। बोले, 'चलिए, अभी धरती पर आचार विचार धरम-करम कुछ बचा तो है। कोई बात नहीं, तुम

कच्चा खाना न खाओगे तो पक्की रसोई का इंतजाम कराता हूं।" इसके बाद उन्होंने एक मुस्तडे नौजवान से कहा, "ऐ, जल्दी से पूड़ी बनवाओ। पुड़िया बनवा लो। झट-पट इंतजाम करो।" फिर चहक-कर बोले, "बिल्ली की चाल जाओ और कुत्ते की चाल आओ।"

कवि लोग भाई रामअजोर का मुंह देखते रह गए। फिर उस कवि ने पल्लवजी के आने पर उनसे अंग्रेजी में कुछ कड़ी-कड़ी बातें कीं। उधर से कवियत्री जी ने कुछ और जोड़ा। फिर एक कवि ने पानी से भरी नांद की ओर इशारा किया। चौथे कवि ने टाट के नीचे से एक गोबर का टुकड़ा उठाकर पल्लवजी पर फेंका। पांचवें कवि किसी खास मजमून पर न आकर उन्हें सिर्फ डांटते रहे। यह हालत देख कथावाचकजी ने कोदईराम से चिल्लाकर कोई बात कही, जिस पर कोदईराम ने गुलमुच्छों पर ताव देकर और गला फाड़कर 'डडडड्डक्कारि चचचचूचट्टूरी चडी ।' से शुरू होने वाला एक छप्पय पढ़ना शुरू कर दिया। तब भाई रामअजोर ने रुआंसे हो आए पल्लवजी को ललकार कर कहा, "क्या बात है, पल्लौ जी ? घबराते क्यों हैं ?" इस पर चारों ओर से 'क्या बात है, क्या बात है' कहते हुए कई मुस्तडे वहीं आकर पिल पड़े। इसके बाद कवियों में एकदम से शांति छा गई और कुछ कवि खा चुके और कुछ पूड़ियों का इंतजार करते रहे।

पहले किसी ने भाई रामअजोर से कहा उन्होंने पल्लवजी से, पल्लवजी ने कवियों से और फिर चारों तरफ शोर मच गया कि "बल्लभ जी आ गए, बल्लभ जी आ गए।" और सचमुच ही दूसरे क्षण बल्लभ जी नाम के कवि चौपाल में दाखिल हुए। एक कवि ने उन्हें भद्दी-सी गाली देकर अपने पड़ोसी से कहा, "पार साल इसे अपने सम्मेलन में बुलाया था तो सैकड़ा रुपये मांग रहा था। आज यहां चार रुपल्लों के पीछे आठ कोस साइकिल चलाकर आया है।" एक दूसरे कवि ने बल्लभ जी को प्रेम से अपने पास बैठाया और कहा, 'ऐसे अंधेरे और सर्दी में यहां तक साइकिल पर आना, आपका ही बूता था।" बल्लभ जी फर्श पर धप् से बैठ गए। धीरे से बोले, 'मैं क्या

जानता था कि यह जगह यहा पर है ? महेश जी की चिट्ठी मिली, चला आया। महेश जी की मुरव्वत ने मार डाला।"

कवि लोग आपस मे सम्मेलन की बदइंतजामी की निंदा कर रहे थे। सयोजक को कोस रहे थे। साइकिल से घुडसरी पहुचकर वल्लभ जी ने महेश जी का जिक्र क्या किया, जैसे कवियो को कोई भूला हुआ फारमूला याद करा दिया। एक कवि ने अपने पडोसी से कहा, 'मैं यहा हरगिज नही आता। पर महेश जी की चिट्ठी मेरे पास भी आई थी। उन्ही के प्रेम मे चला आया।' इस पर पडोसी ने कहा, "मैं ही क्यो आता। पर महेश जी के पत्र ने मजबूर कर दिया।" फिर तो, कहीं एक कवि पूछता, 'आप दिल्ली जाने वाले थे ?" जवाब मिलता, "पर कहा जा पाया ? यहा के लिए महेश जी की चिट्ठी आ गई।' दूसरा कवि पूछता आपका दफ्तर से छुट्टी कसे मिल गई ?" उधर से कोई कहता 'छुट्टी कहा मिली ? पर महेश जी की बात टालना ।" कहा कोई धीरे से सवाल करता, "आपका कितना किराया तै हुआ है ? तो दूसरा जोर से जवाब देता, किराए का क्या सवाल ? महेश जी के प्रेम मे चला आया। जो भी दे दें। अब बहुत से कवि जो घुडसरी पहुचने के कारण एक-दूसरे के आगे झेंप रहे थे, महेश जी के नाम पर शहीद होकर हसने बोलने लगे। पल्लवजी ठुड्डी को उगलियो की चुटकी से दबाए हुए सोचते रहे कि ये महेश जी कौन हैं ?

लगभग दस बजे रात से कवि-सम्मेलन शुरू हुआ। स्टेज पर जहा कल नाटक हुआ था और टिकट बाबू का बोलबाला था, वहा आज कवियों के बैठने का मच बन गया था। पीछे घोड़े पर चढे शिवाजी की तस्वीर वाला पर्दा था जिसकी साइड्स मे तालाब मे नहाती हुई परियो की तस्वीरें थी। सभापति और कवि लोग इसी मच पर बैठे। सामने एक शामियाना था जिसके नीचे तीन चार सौ आदमी बैठ गए थे। पर उनके आगे चारों ओर लगभग चार पाच हजार आदमियों की भीड़ ओस मे बैठी हुई थी। कुछ दूर पर फाटक के पास पेड के नीचे तीन-चार चौकीदार अलाव ताप रहे थे। कुछ सिपाही चारपाइयो पर पड़े बीड़ी पी रहे थे। एक लड़का नौटकी सुना रहा था। आसपास

धएदार ढिबरियों की रोशनी मे खोचेवाले मूगफली, रामदाने के लड्डू, लैया कड़ाकेदार आदि का नारा बुलद कर रहे थे। सभापति जनार्दन-दास ने इस सबको देखा और कबूतर की तरह गर्दन फुलाकर पल्लवजी से कहा, 'यह शोर बद कराइए। सम्मेलन शुरू किया जाए।" पल्लवजी ने यह बात भाई रामअजोर से कही, भाई रामअजोर अपने वजनी पावो से धम धम करते हुए मच से नीचे उतरे और कांस्टेबलो के पास जाकर कहने लगे "दीवान जी, काम शुरू होने वाला है। नौटकी बद कराइए।" फिर खोचेवालों से चीखकर बोले, "चुपचाप बैठे रहो सालो, नही तो एक एक की टाग चीरकर फेंक दूगा।" इसके बाद सन्नाटा छा गया।

पहले प० दसादीन शर्मा का भाषण यह बताने के लिए हुआ कि आजकल हिंदी म किसी को भी कविता लिखना नही आता। फिर पल्लवजी ने अपने भाषण मे यह सूचना दी कि हिंदी में कुछ कवियो को कविता लिखना आता है और वे सब आज धुस्मरी मे उपस्थित हैं। फिर कविता पाठ शुरू हुआ।

पहले उजागर शर्मा ने राधश्याम कथावाचक का एक वदना वाला चौबोला सुनाया। फिर बाहर से आई हुई कवियत्री ने अपना एक प्रेम-गीत सुनाया। गीत गाते गाते वे भीड देखकर घबरा गइ। आसमान को छूने वाली लबी-लबी लाठिया लिए हुए लगभग चार हजार आदमी ओस मे बचने के लिए सिर पर अगोछा बाधे बैठे हुए थे। सभी बीडी पी रहे थे या चिलम फूक रहे थे। लगभग सभी चुप थे और इतना चुप थे कि कवियत्री को नदियो के बीरान कछार, सुल्ताना डाकू मानसिंह और मशीनगनो की याद आने लगी। वे इतना डर गइ कि जब कवियो ने उनके गीत की एक लाइन पर आदत के मुताबिक 'वाह वाह' की ना व चाह पडी। एकदम से उन्होने अपना गीत समाप्त कर दिया कवियो ने तालिया बजाइ। जनता चुपचाप सुनती रही।

इसके बाद कविताओं का समा बध गया। रस से असमान हुए प्रेम गाती ने हवा बाध दी। कुछ देर बाद एक कवि ने अपनी गद्यमयी कविता सुनाई। जनता ने यह सब कुछ चुपचाप सुन लिया। फिर दूसर

कवि ने यह अनुभव किया कि जनता कुछ ज्यादा खामोश है। उन्होंने उसका ध्यान शिवाजी की तस्वीर की ओर खींचा। लोगों की निगाहें पर्दे पर शिवाजी के घोड़े और नहाती हुई सुन्दरियों पर अटकी रहीं। तब तक उस कवि ने शिवाजी की लड़ाइयों पर एक वीर रस की कविता सुनाई, *गुरु गोविंदसिंह के लड़कों के बलिदान का वर्णन किया*, कड़े शब्दों का अर्थ भी समझाया और बार-बार कवियों की वाहवाही खींची। सभापति ने इस कवि को एक मेडल देने का वादा किया। कवियों ने तालियां बजाईं। शामियाने के नीचे से दो चार लोगों ने इन तालियों की नकल की। पर तालियां वहीं पिट-पिटाकर रह गई। जनता कुछ नहीं बोली। इस पर खीझकर एक कवि ने अभिनयपूर्वक वहां की स्थानीय देहाती बोली में एक मजेदार कविता सुनाई। दूसरे कवि इसे सुनकर हंसने लगे। *जनता ने भी कुछ दिलचस्पी दिखाई।* यानी कुछ ने अपनी लाठियों को लंबा-लंबा करके जमीन पर लिटा दिया और कई ने बीड़ियां सुलगाईं। फिर जो देहाती में कविताएं नहीं लिखते थे उन्होंने भी देहाती की कविताएं सुनाईं। पर तबतक यह तरकीब भी पुरानी हो गई। शामियाने के नीचे बैठे लोगों तक ने हंसना बंद कर दिया। इस खामोशी के सामने कवि लोग एक अजब-सी खीझ से भर गए। उन्हें वे सम्मेलन तक प्रेम के साथ याद आने लगे जहां कवियों को हूट किया जाता है और सभापति के लेक्चर पर आवाजें कसी जाती हैं।

अंत में पल्लवजी ने अपने गीत सुनाए जिस पर भाई रामअजोर धमधमाते हुए सिपाहियों के पास जाकर बोले 'हमारे स्कूल में पढ़ाता है। अच्छा काम दिखाता है। पट्ठा है होशियार।' जनता ने चुपचाप इन गीतों को भी निगल लिया। अपने भाषण के पहले कवियों के आग्रह पर सभापति जनार्दनदास ने रन्तिदेव की कथा नामक अपनी एक पाठ्य-पुस्तकी कविता सुनाई। फिर भाषण में उसने सम्मेलन की भारी सफलता पर भारी हर्ष प्रकट किया और घुड़सरी जसी जगह पर इतना भारी आयोजन करने वाले दसादीन शर्मा और पल्लवजी को बधाई दी। पल्लवजी ने कवियों से कष्ट के लिए क्षमा मांगी, जनता

को धन्यवाद दिया और एक बजे रात तक सम्मेलन खत्म हो गया। सब लोग मच स नीचे उतर आए। पर्दे के ऊपर शिवाजी की तस्वीर, तालाब मे नहाती सुदरिया, गैस के हडे चमकते रहे।

पर ओस मे बैठे हुए लोग अब भी रजाई मे दुबके बैठे रहे। कुछ ने चिलमे सुलगानी शुरू कर दी, कुछ ने पैर फैला दिए। पेड की ओर बैठा हुआ सिपाही किसी खोंचे वाले को गालिया देने लगा। कुछ दूरी पर भाई रामबजोर गमछा सभालते और चिल्लाते हुए दीख पड़े, "वाह चलाओ वाह।" दो छोकरो ने हामिद डाकू की नौटकी से गजल का एक मशहूर कोरस छेड दिया। सब लोग इतमीनान से हस-हसकर बात करने लगे, एक कोने से दूसरे कोने वालो को पुकारने लगे और कुछ घरेलू मजाक उछालने लगे। कुछ समझकर प० दसादीन शर्मा मच पर आकर खडे हो गए और बोले, "सम्मेलन खत्म हो चुका है। अब आप लोग जा सकते हैं।"

यह सुनते ही लोगों मे कुहराम मच गया। जमीन पर पडी हुई लाठिया सीधी हो गई। रजाई और चादरो के पल्ले कधो पर फेंक-फेंककर लोग अपनी जगह खडे हो गए। कुछ देर तक सब एक दूसरे से चीख चीखकर बातें करते रहे। फिर उसके बाद कुछ देर तक लोग उसी तरह चीख चीखकर एक दूसरे को चुप करते रहे। बलवा-सा होने लगा। प० दसादीन शर्मा जहा थे, वहीं चुपचाप सहमे हुए खडे रह गए। काफी देर बाद लोग चिल्लाना छोडकर फिर से जमीन पर बैठने लगे। उसके बाद दो-चार नौजवान लाठिया लिए गोल बाधकर प० दसादीन शर्मा के पास आए और उन्हें चारो ओर से घेरकर खडे हो गए। शर्मा जी ने घबराहट के मारे हकलाते हुए पूछा, "क्या बात है? आप लोग क्या चाहते हैं।"

उनके सामने एक तगडा आदमी सीना ताने खडा था। वह कुछ बोलने के लिए आगे बढ़ा। उसका निहायत काला-कलूटा रग, चेचक-दार चेहरा, बिच्छू के डक-सी उठी हुई मूछें, गिरगिट-सी हिलती हुई गरदन—इसे देखते ही शर्मा जी चौंक पडे। तेल मे सीची हुई वजन-दार लाठी को ठनाके के साथ उसने उनके सामने जमीन पर पटका।

शर्मा जी की आखें फैल गईं। वे गला फाड़कर मदद के लिए चिल्लाने ही वाले थे कि उस आदमी ने बाएं हाथ को माथे तक ले जाकर उन्हें सलाम किया, फिर बड़ी भलमनसाहत के साथ पूछा, "यह तो जो कुछ हुआ, ठीक ही हुआ, पर यह बताइए पंडित जी, कि कल वाला असली खेल कब शुरू होगा ? टिकट बाबू कब आएंगे ? '

अगद का पाव

वैसे तो मुझे स्टेशन जाकर लोगों को विदा देने का चलन नापसंद है, पर इस बार मुझे स्टेशन जाना पड़ा और मित्र को विदा देनी पड़ी। इसके कारण थे। पहला तो यही कि वे मित्र थे और मित्रों के सामने सिद्धांत का प्रश्न उठाना बेकार होता है। दूसरे, वे आज निश्चय ही पहले दर्जे में सफर करनेवाले थे जिसके सामने खड़े होकर रूमाल हिलाना मुझे एक निहायत दिलचस्प हरकत जान पड़ती है।

इसलिए मैं स्टेशन पहुचा। मित्र के और भी बहुत से मित्र स्टेशन पर पहुचे हुए थे। उनके विभाग के सब कर्मचारी भी वहीं मौजूद थे। प्लेटफार्म पर अच्छी खासी रौनक थी। चारों ओर उत्साह फूटा-सा पड़ रहा था। अपने दफ्तर मे मित्र जैसे ठीक समय से पहुचते थे, वैसे ही गाड़ी ठीक समय पर आ गई। अब उन्होंने स्वामिभक्त मातहतों के हाथों गले में मालाएं पहनीं, सबसे हाथ मिलाया, सबसे दो चार रस्मी बातें कहीं और फस्ट क्लास के डिब्बे के इतने नजदीक खड़े हो गए कि गाड़ी छूटने का खतरा न रहे।

गाड़ी छूटने वाली थी। लोगों ने सिगनल की ओर देखा। वह गिर चुका था।

अब चूंकि कुछ और करना बाकी न था इसलिए उन्होंने उन लोगों

मे से एक आदमी से बात करनी शुरू की जो ऊपरी मन से हर काम के आदमी को दावत के लिए बुलाते हैं और जिनकी दावत को हर आदमी ऊपरी मन से हसकर टाल दिया करता है। हमारे मित्र भी उनकी दावत टाल चुके थे। इसलिए व कहने लगे, "इस बार आऊगा तो आपके ही यहा रुकूगा।

व हसने लगे। कहने लगे, "आप ही का घर है। आने की सूचना भेज दीजिएगा। मोटर लेकर स्टेशन आ जाएगे। तब मित्र ने कहा कि मोटर की क्या जरूरत है। तब व बोले कि वाह साहब, मोटर आप ही की है इसमे तक्ल्लुफ की क्या जरूरत है। तब मित्र बोले कि तकल्लुफ घर वालो से तो किया नही जाता। तब वे बोले जाइए साहब ऐसा ही घर वाला मानते तो आप बिना एक शाम हमारे गरीब खाने पर रूखा सूखा खाए यो ही न निकल जाते। तब मित्र ने कहा कि ऐसी क्या बात है आप ही का खाता हू। तब वे हें हें करने लगे। तभी गाडी ने सीटी दे दी और लोग आशापूवक सिगनल की ओर झाकने लगे।

मैंने इस बातचीत मे कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई क्योकि मित्र को हमेशा मेरे ही यहा आकर रुकना था और हम दोनो इस बात को जानते थे।

ठीक वसे ही जब मित्र दफ्तर मे आते तो समय से घर जाने मे हमेशा कुछ देर कर देते थे, समय हो जानेपर भी गाडी ने सीटी तो दे दी पर चली नही। इसलिए फिर रुक रुककर इन विषयों पर बातें होने लगी कि मित्र को पहुचते ही सबको चिठठी लिखनी चाहिए और उस शहर मे अमरूद अच्छे मिलते है और साहब आइएगा तो अमरूद जरूर लाइएगा। तब पुराने नौकर ने बताया कि नाश्तेदान को बिस्तर के पीछे रख दिया है। तभी पुराने हेड क्लक बोले कि बिस्तर सीट पर बिछा दिया गया है। तब एकाउटेंट ने कहा कि बिस्तर का सिरहाना उधर के बजाय इधर होता तो अच्छा होता क्योंकि उधर कोयला उडकर आएगा। तब हेड क्लक बोले कि नहीं कोयला उधर नहीं आएगा बल्कि उधर से सीनरी अच्छी दिखेगी। तभी कशियर बाबू आ

गए। उन्होंने मित्र को दस रुपये की रेजगारी दे दी। तब मित्र ने खुले-आम उनके बच्चे को थपथपाया और खुले गले से उन्हें धन्यवाद दिया।

पर इस सबसे न तो कुछ होना था, न हुआ। लोग महीना भर से जानते थे कि मित्र को जाना है। इसलिए मतलब की सभी बातें पहले ही अकेले में खत्म हो चुकी थी और सबके सामने वे सभी बातें की जा चुकी थीं जो सबके सामने कही जाती हैं। सामान रखा ही जा चुका था, टिकट खरीदा ही जा चुका था। मालाएं डाली ही जा चुकी थीं। हाथ या गले या दोनों मिल ही चुके थे और गाडी चलने का नाम तक न लेती थी। थिएटर में जब हीरो पर वार करने के लिए विलेन खंजर तानकर तिरछा खडा हो जाता है, उस वक्त परदे की डोरी अटक जाए तो सोचिए क्या होगा? कुछ वैसी ही हालत थी। परदा नहीं गिर रहा था।

चूंकि मेरे पास करने को कोई बात नहीं रह गई थी इसलिए मैं मित्र से कुछ दूर जाकर खडा हो गया और किसी ऐसे आदमी की तलाश करने लगा जो बराबर बात कर सकता हो। जो ऐसा आदमी नजर में आया उसे मित्र की ओर ठेल भी दिया। उसने अपनी हमेशा वाली मुसकान दिखाते हुए कहा, 'आपके जाने से यहां का क्लब सूना हो जाएगा।" मित्र ने हंसकर इस तारीफ से इनकार किया। उसने फिर कहा, "पहले ब्राउन साहब के जमाने में टेनिस इसी तरह चली थी पर बीच में दब गई थी। आपके जमाने में फिर जोर पकडने लगी थी पर अब देखिए क्या होता है।" मित्र बोले, 'होना क्या है? आप चलाइए।" तभी वे एकदम नाराज हो गए। तुनक कर बोले, "मैं क्या चला सकता हूं जनाब, मुझे तो ये लडके क्लब का सेक्रेटरी ही नहीं होने देना चाहते। अब कोई टिकियाचार सेक्रेटरी हो तभी टेनिस चलेगी। मुझे तो ये निकालने पर आमादा हैं।" बोलते-बोलते वे अकडकर खडे हो गए। मित्र ने हंसकर इस विषय को टाला। उसके बाद इनकी बातों का भी दिवाला पिट गया। और बात आई-गई हो गई।

पर गाडी नहीं चली।

मित्र कुछ देर तक बेचैनी से सिगनल की ओर देखते रहे। कुछ लोग प्लेटफार्म पर इधर उधर टहलकर पान सिगरेट के इंतजाम में लग गए। कुछ को अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं ने इस कदर बेजार किया कि वे पास के बुकस्टाल पर अखबार उलटने लगे। कुछ के मन में कला-कौशल और ग्रामोद्योगों के प्रति एकदम से प्रेम उत्पन्न हो गया। वे पास की एक दूकान पर जाकर हैंडिक्रैफ्ट के नमूने देखने लगे। तब तक एक पुराना स्थानीय नौकर मित्र के हाथ लग गया। उसे देखते अचानक मित्र के मन में समाज की समाजवादी व्यवस्था के प्रति विश्वास पैदा हो गया। वे हँसकर उसकी प्रशंसा करने लगे। तब वह रोकर अपनी पारिवारिक विपत्तियाँ सुनाने लगा। अब मित्र बड़े करुणाजनक भाव से उसकी बातें सुनने लगे। तब कुछ टिकट-चेकर तेजी से आए और सामने से निकले। मित्र ने उनकी ओर देखा पर जब तक वे कुछ बात करने की बात तै करें वे आगे निकल गए। तब तक एक लंबा-सा गार्ड सीटी बजाता हुआ निकला। हेड क्लर्क ने कहा, "सुनिए साहब", पर यह उसने अनसुना कर दिया और सीटी बजाता हुआ आगे बढ़ गया।

गाड़ी फिर भी नहीं चली।

कुछ को परिस्थिति पर दया आई और वे फिर मित्र के पास सिमट आए। पर घूम फिरकर कई लोगों ने कई छोटे छोटे गुट बना लिए और कला के लिए जैसे कला—वैसे बात के लिए बातें चल निकलीं। एक साहब की निगाह मित्र की फूल-मालाओं पर गई। उनको उसी से प्रेरणा मिली। बोले 'गेंदे के फूल भी क्या कमाल पैदा करते हैं। असली फूल मालाएँ तो गेंदे के फूलों की ही बनती हैं।'

बातचीत की सड़ियल मोटर एक बार जब धक्का खाकर स्टार्ट हो गई तो उसकी फटफटाहट का फिर क्या पूछना! दूसरे महाशय ने कहा, "इंडिया में अभी तो जैसे हम बैलगाड़ी के लेवेल से ऊपर नहीं उठे वैसे ही फूलों के मामले में गेंदे से ऊपर नहीं उभर पाए। गाड़ियों में बैलगाड़ी, मिठाइयों में पेड़ा, फूलों में गेंदा, लीजिए जनाब, यही है आपकी इंडियन कल्चर।"

इसके जवाब में एक दूसरे साहब ने भीड़ के दूसरे कोने से चीखकर

कहा, "अंग्रेज चला गया पर अपनी औलाद छोड गया।"'

इधर से उन्होंने कहा, "जी हा, आप जैसा हिंदुस्तानी रह गया पर दिमाग बह गया।" इतना कहकर, जवाब म आने वाली बात का वार बचाने के लिए, वे मित्र की ओर मुखातिब हुए और कहने लगे, बताइए साहब, गुलाब की वो-वो वैरायटी निकाली है कि ।'

तभी गाड ने फिर सीटी दी और वे चौंक कर इजिन की ओर देखने लगे। इजिन एक नये ढग से सी-सी करने लगा था। कुछ सेकड तक यह आवाज चलती रही पर उसके बाद फिर पहले वाली हालत पर आ गई, ठीक वैसे ही, जसे दफ्तर छोडने के पहले मित्र कभी-कभी कुर्सी से उठकर भी कोई नया कागज देखत ही फिर से बैठ जात थे। तब उस पुष्प प्रेमी ने अपना व्याख्यान फिर से शुरू किया, "हा साहब, तो अंग्रेजो न गुलाब की वो वो वैरायटी निकाली हैं कि कमाल हासिल है। सन बर्स्ट, पिक पल, लेडी हैमिल्टन, ब्लेक प्रिंस। वाह, कमाल हासिल है। और अपने यहा? यहा तो जनाब वही पुराना टुइया गुलाब लीजिए और खुशबू का नगाडा बजाइए।"

बात यही पर थी कि इस बार गाड ने सीटी दी। बहस थम गई। पर कुछ देर गाडी म कोई हरकत नही हुई। इसलिए वे दूसरे महाशय भी भीड को फाडकर सामने आ गए। अकडकर बोले, "हां साहब, जरा फिर से तो चालू कीजिए वही पहले का दिमाग वाला मजमून। मगर तो भई, दिमाग हिंदुस्तानी ही है, पर आइए, आपके दिमाग को भी देख लें।

तब मित्र महादय बडे जोर से हसे और बोल, "हाशिम भाई और सक्सना साहब म यह हमेशा ही चला करता है। याद रहेंगे, साहब, ये झगडे भी याद रहेंगे।'

इस तरह यह बात भी खत्म हुई, झगडे को मजबूरन मदान छोडना पडा। उधर सिग्नल गिरा हुआ था। इजिन फिर से 'सी-सी' करने लगा था। पर गाडी अगद के पाव-सी अपनी जगह टिकी थी।

भीड के पिछले हिस्से म दशन शास्त्र के एक प्रोफेसर धीरे धीरे किसी मित्र को समझा रहे थे, "जनाब, जिन्दगी म तीन बटे चार तो

दबाव है, कोएर्शन का बोल-बाला है, बाकी एक बटे चार अपनी तबीयत की जिंदगी है। देखिए न, मेरा काम तो एक तख्त से चल जाता है, फिर भी दूसरों के लिए ड्राइंग रूम मे सोफे डालने पडते हैं। तन ढाकने को एक धोती बहुत काफी है, पर देखिए, बाहर जाने के लिए यह सूट पहनना पडता है। यही कोएशन है। यही जिंदगी है। स्वाद खराब होने पर भी दूध छोडकर कॉफी पीता हू, जासूसी उपन्यास पढ़ने का मन करता है पर काट और हीगेल पढता हू, और जनाब, गठिया का मरीज हू पर मित्रो के लिए स्टेशन आकर घटों खडा रहता हू।"

वे और उनके श्रोता—दोनो रहस्यपूण ढग से हसने लगे और फिर मुझे अपने नजदीक खडा पाकर और जोर से खुलकर हसने लगे ताकि मुझे उनकी निश्छलता पर सदेह न हो सके।

गाडी फिर भी नहीं चली।

अब भीड तितर बितर होने लगी थी और मित्र के मुह पर एक ऐसी दयनीय मुसकान आ गई थी जो अपने लडकों से झूठ बोलते समय, अपनी बीवी से चुराकर सिनेमा देखते समय या कोट मांगने मे भविष्य के वादे करते समय हमारे मुहों पर आ जाती होगी। लगता था कि वे मुसकराना तो चाहते हैं पर किसी से आख नही मिलाना चाहते।

तभी अचानक गाड ने सीटी दी, झडी हिलाई। इजन का भोपू बजा और गाडी चलने को हुई। लोगो ने मित्र स उत्साहपूवक हाथ मिलाए। फिर मित्र ही डिब्बे मे पहुचकर लोगो से हाथ मिलाने लगे। कुछ लोग रूमाल हिलाने लगे। मैं इसी दश्य के लिए बेचन हो रहा था। मैंने भी रूमाल निकालना चाहा पर रूमाल सदा की भाति घर पर ही छूट गया था। मैं हाथ हिलाने लगा।

एक साहब वजन लेने वाली मशीन पर बडी देर से अपना वजन ले रहे थे और दूसरों का वजन लेना देख रहे थे। गाड की सीटी सुनते ही वे दौडकर आए और भीड को चीरते हुए मित्र तक पहुचे। गाडी के चलते-चलते उन्होंने उत्साह स हाथ मिलाया। फिर गाडी को निश्चित रूप से चलती हुई पाकर हसरत के साथ बोले, "काश, कि यह गाडी यही रह जाती।

बया और बदर की कहानी
एक रिसर्च स्कॉलर की जबानी

एक जगल मे एक बया[1] रहता था। उसने एक बबूल की कटीली डाल पर अपना घोसला बना लिया था। इधर उधर से तिनके बटोरकर मह

१ 'बया एक चिड़िया का नाम है।' देखिए 'अवर बड्स, लेखक पी० स्मिथ (पृ० १२३); 'वह जंगल में रहती है और बस्ती में भी।' (वही पृ० १२४); 'चिड़िया वह है जिसके पैर भी हों और पख भी।" (वही पृ० १२)। 'मनुष्य के पैर ही होते है पख नहीं।' (वही पृ० १३)। चिड़िया चिड़िया है, आदमी आदमी। केवल उल्लू एक ऐसा है जो दोनों कोटियों में होता है।' (वही, पृ० १४)। साथ ही देखिए, श्री केशवचन्द्र वर्मा की 'एक ईसपनुमा कहानी।

इस बाल कथा में आख्येय बया के वन में निवास करने का एक रहस्य है। मानवीय जीवन से व्यतिरिक्त परिस्थितियों में बया को रखकर उसमे जिन गुणों का समावेश किया गया है उससे यही साध्य है कि मानव जाति में वे गुण क्षीण हो चुके हैं। यदि बया का निवास-स्थान वन न होकर कोई वाटिका होती तो संभवत: मानवीय समाज मे प्रचलित झूठ बेईमानी छल कपट प्रपच आदि स्वाभाविक मानव-दुर्गुण बया में समाविष्ट हो जाते। (देखिए, पक्षी मनोविज्ञान' पृ० ३)।

घोसला बनाया गया था। कटीली डाल पर अपने शांत और सुखी घोसले म बया अपनी पत्नी के साथ सानद जीवनयापन करता था।[1]

बया के कुछ अडे बच्चे भी थे जो उसी घोंसले मे शांति के साथ पडे सोया करते थे।

इस प्रकार रहते माघ का महीना आया। पाला गिरने लगा। पछुआ जोर से बहने लगी। शीत और तुषार के मारे हाथ-पैर ठिठुरने लगे। बबूल के पीले फूल झर गए। उसकी बीजदार फलिया कही पड गइ। उसकी शाखाए और भी काली हो गईं। तने मे चिपका हुआ गोद सूख गया। उसमे दातुन लायक कोमल लकडी का मिलना कठिन हो गया। उसके काटे तक सड गए। परतु बया आनदपूर्वक सपत्नीक,

१ इसी परिस्थिति को ध्यान में रखकर डॉ० एम० एस० गप्त एम० पी० ने "पंचवटी में लिखा है—

जितने कष्ट कटकों में हैं
जिनका जीवन सुमन खिला।
गौरव गध उन्हें उतना ही
यत्र-तत्र-सवत्र मिला।

बया के इस प्रकार के जीवन से उत्तरकालीन छायावादी कवियों ने (अर्थात सन् १९३७ ई० से सन १९४१ ई० के दीच काल में एक नयी साहित्यिक परपरा कायम करने वालों) एक एसे जीवन-दशन की कल्पना की थी जिसमें एकात कानन शांत निशीथिनी निभृत-नीड प्रम प्रेयसी आदि का समावेश हुआ था और जो जीवन को मानवीय तृष्णाओं से परे ले जाकर एक शांत सुस्थिर वातावरण में बिताने की राह दिखाता है।

"यह बयामार्गी दशन फ़ारस से चला था। उमरख़य्याम की रुबाइयों के भ्रष्ट अनुवाद के सहारे यह रोमाटिक रिवाइवल के कवियों की वाणी म पनपा। बाद में यह बगाल के रास्ते हिंदी साहित्य में आया। आलोचक इस दर्शन को भारतीय मानते हैं किंतु यह ध्यान में रखने की बात है कि बया शुद्ध भारतीय चिड़िया है और बयामर्गी दशन शद्ध भारतीय दशन है। (यह बात लेखक स्वय कह रहा है पर चूकि वह चाहता है कि इसका उपयोग विद्वानों द्वारा दशन शास्त्र के किसी इतिहास म हो अत उसे उल्टे अर्धविरामों (इन्वर्टेड कॉमाज) में बांध दिया गया है।

सतान-सहित, अपने शातिमय घोसले मे जीवनयापन करता रहा।

सहसा एक दिन बादल घिर आए। हवा और जोर से बही। बिजली चमकी और ओलो की एक भयंकर बौछार के बाद पानी वेग के साथ गिरने लगा। चारो ओर अधेरा-सा छा गया। जगल की भयानकता बढ गई।[1]

जब बिजली चमकी तो बया ने अपना सिर घोसले से बाहर निकाला[2]। उसने देखा कि घोसले से कुछ ही दूर एक बदर बैठा हुआ

१ बयामार्गी दशन में इस प्रकार के आचरण से बाह्य प्रकृति की हीनता सिद्ध की गई है। बयामार्गी के लिए आवश्यक है कि वह अपने शांत निभृत-नीड़ में सानन्द पड़ा रहे उस नीड़ का आधार भले ही प्रतिकूल परिस्थितियों में विनाश की ओर जा रहा हो। बाह्य परिस्थितियों की विषमता बयामार्गी की निभृत-नीड़ प्रियता को आघात नही पहुचा सकती। (देखिए, एस० लाल का 'प्रकृति और पलायनवाद, पृ० ३०५)।

२ देखिए, वर्षा वर्णन, पद्मावती का विरह (पद्मावत एम० एम० जायसी द्वारा लिखित)। साथ ही देखिए वर्षा वर्णन (टी० दास द्वारा लिखित रामचरित मानस' के किष्किधा काड मे)।

बयामार्गी दर्शन में वर्षा करकापात आदि को बाह्य परिस्थितियों की विषमता का द्योतक माना गया है क्योंकि वर्षा में बया अपने निभृत-नीड़ के लिए तिनके चुनकर नहीं ला सकता। मानवीय जीवन में वर्षा का क्या महत्त्व है इस विषय में मतभेद है। परतु यह सब मानते हैं कि वर्षा का महत्त्व साधारण नहीं है। (देखिए, प्रकृति और पलायनवाद, पृ० ५१०, साथ ही देखिए ए सर्वे आन इडियन एग्रीकल्चर, पृ० २०३)।

३ कभी कभी बयामार्गी बाह्य परिस्थितियों का आनद लेने के लिए अपनी स्थितियों से ऊपर सिर उठाता है। पर वह अपनी स्थितियों में इतना अभिभूत होता है कि उसे अन्य परिस्थितियां क्रमश कौतुक-जनक तथा विचित्र-सी जान पड़ती हैं। (देखिए वही प्रकृति और पलायनवाद पृ० ५२०)।

बया के घोसले का दरवाजा नीचे से होता है। अत बया जब सिर बाहर करके कुछ देखना चाहेगा तो उसे सब-कुछ उल्टा दिखाई पड़ेगा। (प्लटार्क लिखित 'पशु पक्षियों की विचित्र बातें, पृ० २०३ छठा संस्करण।)

है।[1] बदर बिना किसी सहारे के पेड की डाल पर चुपचाप घुटनो मे मुह छिपाए बैठा था। पानी की बूदें तज हवा के कारण तिरछी होकर उसके शरीर पर पड रही थी। वह सर्दी म काप रहा था। बया को उस पर दया आ गई।[2] उसने बदर से कहा 'ऐ भाई,[3] तुम क्यो इस घोर वर्षा म कष्ट उठा रहे हो ? तुमने शायद मेहनत करके अपना घर नही बनाया'। इसी कारण तुमको इतना कष्ट हो रहा है। देखो, हमने कितना सुदर घोसला बना लिया है।[4] इसी स हम इस बरसात और

१ 'बदर दो स्थितियों का प्रतीक है एक तो मनष्य की आदिम सस्कृति का दूसरे प्रकृति मे जो कुछ भी क्षिप्र चचल और हानिकारक है उस सबका। (रिसर्चेज इन ऐन्थ्रापालजी एजूकेशन ब्यूरो मगजीन एनुअल नबर पृ० २०१)।

बदर में मानवीय सस्कृति के तथा प्रकृतिजन्य सस्कारों के सभी तत्त्व एक साथ मिलते हैं। शायद इसीलिए उसका सामना बया से कराया गया है जो बयामार्गी दशन का प्रवतक है।

२ 'बयामार्गी को अपने निभत-नीड से बठे-बठ बाह्य परिस्थितियों से आक्रांत जतु पर प्राय दया आ जाती है। दया से उसके मन में सवेदना उत्पन्न होती है। सवेदना से समझ आती है। समझ से वाद निकलते हैं। वाद से विवाद निकलते हैं। विवाद से बयामार्गी के मन में निभत नीड के प्रति और भी आस्था बढती है।

बयामार्गी राजनीति में आरामकुर्सीवादी कला में पलायनवादी साहित्य में साधनावादी दशन में आस्थावादी छाया में प्रकाशवादी और प्रकाश में छायावादी होता है।' (देखिए, सुभाषित सचय')।

३ इसी परपरा से फ्रांस की राज्य क्रांति में भ्रातृत्व का सिद्धांत स्वीकार हुआ जिसकी चरम परिणति नेपोलियन के शासनकाल में हुई। भाइयो और बहनों' प्यारे भाइयो की चलताऊ चीजो से लेकर 'वसुधैव कुटुम्बकम की भावना का उद्गम इसी संबोधन से निकला है।

४ बयामार्गी दूसरे के कष्ट को अपने कष्ट की माप से नापता है। चूकि उसके पास एक निभत-नीड है अत वह दूसरे के कष्ट का अन्दाज उसके बेघरबार होने में ही कर सकता है।

५ दूसरों स संवेदना प्रकट करने में यह आवश्यक है कि समने दो समवेद के स्तर पर आए। किंतु बयामार्गी अपने कृतित्व का डका पीटकर दूसरे अहतो के प्रति सवेदना प्रकट करता है।

जाड़े में भी सुखी हैं। तुम भी अगर आलस त्यागकर अपना घर बना डालो तो तुम्हें इस भयंकर ऋतु का कष्ट न झेलना पड़े।[1] ऐ भाई, साहस और पुरुषार्थ से काम लो।"[2]

बंदर को जाने क्या सूझा कि वह दांत निकालकर घोंसले पर झपटा।[3] उसने बया के अंडे तोड़ डाले। उसका घोंसला उजाड़ दिया।[4]

बया घबराहट में कुछ और न करके चीखने लगा। उसका घोंसला उजड़ गया और वह अपनी पत्नी के साथ दुःखी होकर उजड़े हुए घोंसले पर शोक प्रकट करता रहा।[5]

सच है, नीच को कभी अच्छी सलाह न देनी चाहिए।[6]

१ दूसरे को उपदेश देना बयामार्गी का जन्मगत अधिकार है। वह स्वयं घोंसले में रहते रहते दूसरों को घोंसलावादी बनाना ही अपना परम कर्तव्य मानता है।

२ बयामार्गी साहस और पुरुषार्थ में इसीलिए इतनी आस्था रखता है कि उसे साहस और पुरुषार्थ दिखाने का अवसर कभी नहीं मिलता। स्वभावजन्य संचय वृत्ति को ही वह पुरुषार्थ मानता है।

३ यह अनावश्यक और मौखिक सहानुभूति के मुकाबले कष्ट में पड़े हुए दुःखी और विकृत मन का पुरुषार्थ मात्र है।

४ जब दुःखी मन और कुछ नहीं कर पाता तो उसे असहायता की स्थिति से उन्माद उत्पन्न होता है। उन्माद में कुछ भी प्रोत्साहन मिलने पर वह अप्रिय वस्तुओं का विनाश आरंभ कर देता है।' (देखिए सुभाषित संचय)

५ बंदर जैसा कहा गया है बाह्य परिस्थितियों का प्रतीक है। उसके द्वारा अपने निभृत-नीड़ के नष्ट होने पर बयामार्गी शोक प्रकट करता है। उर्दू में इस शोक प्रकाश पर अनेक कविताएं लिखी गई हैं। देखिए, जिगर' का इसी चमन में हमारा भी एक जमाना था / यहीं कहीं कोई छोटा-सा आशियाना था। ऐसी मरथापटकाऊ कविताएं सदा लिखी गई हैं और लिखी जाएंगी।

६ यह कहानी तभी लाभप्रद हो सकती है जब कौन नीच है और कौन नीच नहीं है इस भेद को समझ लिया जाए। (देखिए महाभारत, नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्)। अर्थात् जब तक कुछ पूछा न जाए तब तक कुछ न बोलो। बयामार्गी ने इस नेक सलाह का पालन नहीं किया। इसी से वह दुःख को प्राप्त हुआ। बयामार्गी ऐसे ही कारणों से दुःख को प्राप्त होता है।

ग्रंथ विषयक टिप्पणी :—इस लेख में दिए गए जो ग्रंथ आपको प्राप्त न हों उन्हें आप अप्राप्य समझें।

एक देहाती की नजर में
शहर के सौ मीटर

के सामने जो भी सवाल उठाया जाता है, वह उनकी ओर से प्रतिष्ठा का सवाल बन जाता है। हर जायज सवाल का जवाब उनकी प्रतिष्ठा के सवाल में है। यह हालत तो अब है, कहीं सचमुच ही उनकी कोई प्रतिष्ठा होती तब पता नहीं क्या होता !

बहरहाल, जिला बोर्ड के अध्यक्ष ने मध्यम मार्ग अपनाया, यानी मेम्बर साहब को तीन रुपये में भैस दे दी और मुझे ईमानदार कहकर अपने बेईमान साथियो में मेरी खूब तारीफ की। फिर मुझ से कहा, तुम पढ़े लिखे आदमी हो, अलाउद्दीन खिलजी का इतिहास जानते हो, आओ, तुम्हें मैं जानवरों के काम से हटाकर आदमियो का काम देता हू, तुम्हें आज से प्राइमरी स्कूल का अध्यापक बनाता हू। इस तरह से मैं कॉजी हाउस से हट गया और मेम्बर की प्रतिष्ठा बच गई।

अध्यापक पद पर मुझे नियुक्ति तो मिल गई पर स्कूल नही मिला। दो महीने मैं अध्यक्ष के घर पर बैठा-बैठा मतदाताओ की सूचिया तैयार करता रहा। फिर तीन महीने उनके फार्म पर 'अधिक अन्न उपजाओ' आदोलन करता रहा। आखिरकार एक दिन चोरी चोरी मैं उस गांव पहुचा जहा के प्राइमरी स्कूल का मैं अध्यापक था। वहा कोई स्कूल न था, सिर्फ एक कॉजी-हाउस खडा था।

तब मैंने विद्रोह किया और इस बार यह अध्यक्ष की प्रतिष्ठा का सवाल बन गया। उसने मुझे मुअत्तल कर दिया और मुझे भूल गया। कई बार याद दिलाने पर भी वह मुझे भूला ही रहा। तब उसके विरुद्ध एक शिकायती पत्र लिखकर मैं किसी को देने के लिए इस शहर में आया। बस, यहा से मेरी सौ मीटर लबी यात्रा शुरू हो जाती है।

यात्रा के आरभिक बिंदु पर पहुचने के पहले ही शाम हो गई थी। मैं थक गया था। किस से शिकायत की जाए, यह जानने मे और वह कहा है, यह खोजने मे पूरा दिन बीत गया था। पर दफ्तरों में बड़ी खोज बीन करने के बाद भी मुझे अपना मसीहा नही मिला, सिर्फ यह जानकारी मिली कि जो दफ्तर जितना टुच्चा होता है उसकी इमारत उतनी ही शानदार होती है।

सडक के किनारे जहा मैं खडा था, वहा एक तिराहा था। मेरे

दाईं ओर एक तिकोना पार्क था जिसके किनारे संगमरमर के एक सफेद मंडप के नीचे गांधी की प्रतिमा थी। प्रतिमा कांसे की थी या पत्थर की—कहना मुश्किल है, पर काले रंग की थी और सफेद पत्थर की छत के नीचे गोरे काले रंगों का भेद बखूबी प्रकट कर रही थी।

पार्क में बाबुओं की सभा हो रही थी। जो मांगने की हैसियत थी, वे वही मांग रहे थे—यानी महंगाई भत्ते के चंद रुपये! न उन्हें इससे कुछ ज्यादा चाहिए था, न कुछ कम—चुंगी के टूटती छतों वाले स्कूल, अस्पताल के बरामदों में बोरों की तरह पड़े मरीज, कर्ज का सूद चुकाने में ही खत्म होने वाली तनख्वाह, एक ऐसी व्यवस्था की चौबीसों घंटे सेवा जिसके बारे में वे कुछ नहीं समझते—इस सबके खिलाफ उन्हें कुछ नहीं कहना था। वे सिर्फ 'डी० ए०' चाहते थे, वही मांग रहे थे। सामने तंबोली की दुकान पर, कोढ़ में खाज की तरह, रेडियो गा रहा था, 'ना मांगूं सोना-चांदी, ना मांगूं हीरा-मोती, मेरे ये किस काम के।' 'डी० ए० की मांग के सामने यह गीत मुझे बहुत पसंद आया। मैंने सोचा, इस महान गीत का सिद्धांत अगर सारा देश अपना ले तो तस्करी बंद हो जाए, गांधी का रामराज्य आ जाए। क्यों न इसे हम अपने राष्ट्रीय गीत का दर्जा दे दें!

मैं थके पांव, सड़क के किनारे किनारे चल रहा था और पार्क की ओर देख रहा था। अचानक मेरा पांव एक गड्ढे में पड़ा। मेरा पांव अच्छा-खासा देहाती है, इसलिए न झुका, न टूटा, गड्ढे में पड़ा और फिर बाहर निकल आया। मेरा चेहरा देखकर एक खोमचे वाले ने कहा, साले अपने बाप के लिए सड़क पर फाटक बनाते हैं और उसे उखाड़ने के बाद गड्ढा तक नहीं पाटते। मैंने सिर हिलाकर ताईद की, पर जान नहीं सका कि खोमचे वाले के साले कौन हैं और उनके बाप कौन हैं जिनके लिए सड़क पर फाटक सजाये जाते हैं।

बाईं ओर सिनेमा हाउस था, जिसके आगे निठल्लों की भीड़ थी। अचानक उसकी बगल में बिजली की रोशनी जली और रोशनी के हरफों में अंग्रेजी की एक इबारत चमकी। फिर वह बुझी और इस बार हिंदी की इबारत चमक उठी, जिसने मुझे बताया, 'यहां अंग्रेजी शराब

बिकती है।" मैंने गाधी की प्रतिमा की ओर निगाह दौड़ाई। वह अंधेरे में डूब रही थी। तब निडर होकर मैंने अग्रेजी शराब की ओर दुबारा देखा और रोब खा गया। अग्रेज भले ही चला गया हो, अग्रेजी शराब छोड गया है। वैसे भी, मैं दिन में बहुत अग्रेजी सुन चुका था। अग्रेजी शराब के रोब मे आकर गुनगुनाने लगा, ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी।'

सहसा, 'ना मागू हीरा-मोती' वाला गाना बद हो गया। पार्क की सभा में 'इकलाब जिंदाबाद' के नारे गूजे। लाउडस्पीकर पर कोई बात बडे जोर से कही गई। मैं सिफ इतना सुन पाया, 'अगर यह उनकी प्रतिष्ठा का सवाल है, तो हमारी प्रतिष्ठा का भी ।' मेरे मन में आया लपककर मैं उन्हें समझाऊ कि भाई ! खरियत चाहते हो तो बात को उलझने से बचाओ, अगर कहीं यह उनकी प्रतिष्ठा के सवाल से जुड गई तो लाठी, गोली, जेल—सभी कुछ तुम्हारे लिए प्रस्तुत हो जाएगा। पर मन मे बहुत-सी बातें आती हैं और चली जाती हैं, मैंने मुह नहीं खोला।

इस बार गड्ढा नही था, पर किसी दूसरी चीज ने मेरा पाव जकड लिया। किसी जानवर के डर से मैं अपना पाव झटकने ही जा रहा था कि मुझे दिखाई दिया, दो रिरियाते हुए बच्चे—आदमी के बच्चे मेरे पाव से चिपके हुए हैं।

सुना था, दान देते ही आदमी महिमावान बन जाता है। जब उन दोनो को पाच-पाच पसे देकर मैंने महिमा से अपना सिर ऊचा करना चाहा ता लगा आसमान का सारा बोझ मेरे सिर पर आ गया है।

पाक के फाटक पर कई पोस्टर चिपके थे। उनमे सबसे बडा विज्ञापन था, 'सिनेमा में चुबन की समस्या पर विचार-गोष्ठी।' पढने से पता चला बबई में कई मनीषी और कलाकार इस शहर के मनीषियों और कलाकारों के साथ बैठकर सिनेमा मे चुबन की समस्या का चुबन करने वाले हैं।

मेरे पावों मे दो रिरियाते बच्चो की उगलियो की ठिठुरन थी, मेरे पीछे असख्य काँजी-हाउसो का गोबर और फर्जी प्राइमरी स्कूल की गर्द

थी। मेरे पीछे अट्ठानवें फीसदी हिंदुस्तानियों की भीड़ थी जो सिनेमा में घुबन की भीषण समस्या के बारे में अनजान थे। इस विज्ञापन ने जैसे अकड़कर मुझसे कहा—'तुम अहमकों के लिए खाना-पीना, कपड़े, मकान—ये ही समस्याएं हैं, तुम घुबन जैसी असली समस्या को कैसे जान सकते हो?' चिढ़कर मैंने फाटक से विज्ञापन फाड़कर नाली में फेंक दिया। फाटक की दीवार पर सब लिखा हुआ मिला—'यहाँ विज्ञापन चिपकाना मना है।'

पार्क में सभा होती रही। मैं धीरे धीरे चलता रहा। तबोली की दुकान पीछे छूट गई थी, पर उससे एक नये गाने की आवाज आ रही थी। उस गाने को दो तीन नौजवान फटे-पुराने कपड़े पहने, रिक्शा की सीट पर सिमटे हुए दोहरा रहे थे—'जहा तक महक है, मेरे गेसुओं की चले आइए यह है रेशमी जुल्फों का अधेरा न घबराइए।'

घोड़ो की सी आवाज में वे इस गाने को तल्लीन होकर गा रहे थे। सुनते ही मारे उत्साह के मेरे रोयें फूल गए। क्या बात कही है! आशावाद इसको कहते हैं! यह गाना कोई घटिया प्रेम-गीत नहीं है। इसे भी हम राष्ट्रीय गीत समझकर गा सकते हैं क्योंकि इसमें हमारा नेता कहता है कि इस अधेरे से घबराओ नहीं यह तो प्यारा प्यारा, जुल्फों का अधेरा है। सिर्फ नाक से सूंघते हुए, महक के सहारे चले आओ—मंजिल खुद ब-खुद आ जाएगी।

फिर भी, सिनेमा के इस फटीचर गाने में आशा का जो संदेश था, वह मुझे फुला नहीं सका। गांधी भी कभी इतनी बड़ी सांत्वना का संदेश नहीं दे सके थे। मेरे पांवों की रफ्तार तेज हो गई। मैं गांधी प्रतिमा की ओर बढ़ा।

सिनेमा खत्म हो गया होगा। सड़क पर अचानक ही भीड़ बढ़ गई थी। रिक्शों और मोटरों के शोर के ऊपर 'महक है मेरे गेसुओं की' आवाज कई ट्रांजिस्टरों पर एक साथ ऊंची होकर हवा में थम गई। अचानक चाट लइया चना भुने हुए आलू और शकरकंद, मूंगफली, किसी जघन्य चिकनाई में तले हुए कूड़े-भरे खोमचों से उठने वाली उस गंध में मेरी सांस रुंधने लगी। बीस-पचीस कदम आगे आते ही मैं पार्क

के उस कोने तक आ गया जहा एक चबूतरा था, जिस पर सफेद पत्थर का मडप था, जिसके नीचे गांधी की काली प्रतिमा थी। प्रतिमा के नीचे, खुली हवा मे, मैं एक सीढी पर बैठ गया।

हवा बद थी। चारो ओर एक अजीब-सी भीड थी जिससे तरह-तरह की गध निकल रही थी। मजदूरो, बाबुओ, मालिश कराने वालो, मालिश करने वाले छोकरो, बुर्कों मे आवारा-सी घूमने वाली कुछ औरतो—इन सबकी भीड गांधी-मडप के आसपास छितरी हुई थी और जानना मुश्किल था कि कौन क्या चाहता है या धुधलके मे कौन क्या कर रहा है ? मैं शांति और सुरक्षा चाहता था पर एक अजीब, अस्वाभाविक, अश्लील माहौल मुझे घेरता आ रहा था।

अब लाउडस्पीकरों पर कोई फिल्मी गाना पार्क मे भी बजने लगा। पर उससे कहीं ज्यादा साफ आवाज मे 'गेसुओ की महक' वाला गाना मेरे पास एक दूसरी सीढी पर होने लगा। आवाज साफ थी, पर उसकी रिरियाहट और भी साफ थी। मैंने चौंककर देखा, वे ही दोनो बच्चे—जो मुझसे सिक्के ले गए थे, मुझसे कुछ दूरी पर बीडी पीते हुए 'रेशमी जुल्फों के अधेरे' मे आगे बढने का गाना गा रहे थे।

सब कुछ किसी-न किसी की प्रतिष्ठा का सवाल है, पर ये रिरियाते बच्चे किस की प्रतिष्ठा के सवाल से जुडे होंगे—मैंने सोचना चाहा। पर तन-मन की थकान के आगे सोचना भी एक मेहनत थी। जो भी हो, इतना स्पष्ट हो चुका था कि सौ मीटर की वह लबी यात्रा अभी खत्म नही हुई है।

दीवाली, जुआ और कविगण

मुझे पता नही कि शहरो मे दीवाली कैसी होती है क्योकि दीवाली की छुट्टिया मैं प्राय अपने गाव में बिताता हू। पर मुझे लगता है कि शहर मे दीवाली का कुल यही अभिप्राय है कि अमीर इतनी ज्यादा अमीरी दिखाए की गरीबो मे अपनी गरीबी का एहसास और भी गाढा हो जाए। अगर हम देश म सर्वहारा-वर्ग को क्राति के लिए खडा करना चाहते हैं तो इसका सबसे सस्ता नुस्खा यह है कि शहरो मे दीवाली का त्योहार तीन दिन के बजाय तीन महीने के लिए खींच दिया जाए। लोग सफेद और काले धन का करिश्मा देखते देखते इतना उकता जाएगे कि अपने आप क्राति कर बैठेंगे। पर मेरे गाव मे अगर साल में बारह महीने दीवाली होती रहे तब भी कोई क्राति नही होगी। दरअसल अगर जुए को दीवाली का प्रमुख लक्षण माना जाए जो मेरे गाव म बारहो महीने दीवाली चलती है—और क्राति नही होती। दीवाली पर मेरे गाव म रोशनी-वोशनी का ज्यादा चक्कर नहीं सिर्फ जो लोग पूरे साल बागो मे, जगलो में या खडहरो मे छिपकर जुआ खेलते हैं, वे दरवाजो पर खुलकर खेलने लगते हैं और रुपया इकट्ठा करने के लिए जो हारे हुए जुआरी पहले अधेरे मे इक्के-दुक्के मुसाफिर को लूटने की योजना बनाते थे वे इस मौके पर सज्जनतापूर्वक सिर्फ अपने

दांव वह जीत जाता है और उसके हाथ कोई रत्न लग जाता है। उसकी मनोवृत्ति इन पंक्तियों से प्रकट होती है

अब लौं नसानी अब ना नसैहौं।

पायो नाम चारु चिन्तामनि उर कर ते न खसैहौं।

मीराबाई ने भी एक ऐसे ही जुआरी के उल्लास का वर्णन किया है जो पहले बहुत कुछ खो चुका है पर चलते-चलते जिसके हाथ एक उम्दा दाव लग गया है

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।

जनम-जनम की पूंजी पायी जग मे सभी खोवायो॥

सूरदास अपने काव्य मे जीते हुए जुआरी के इस उल्लासपूर्ण मूड को बहुत बाद मे पकड सके हैं। प्राय वह ऐसे जुआरी की मन स्थिति मे रहते हैं जो जीतने के लालच मे अपना नफा-नुक्सान नहीं समझ पाता। वह कहते हैं

माधौ जू, मन माया बस कीन्हो।
लाभ हानि कछु समझत नाही,
ज्यो पतग तन दीन्हो॥

रसखान का प्रसिद्ध सवया 'या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर को तजि डारौं' पता नही किस मूड मे लिखा गया था, पर वह मेरे गांव के चरवाहो पर पूरा पूरा चस्पा होता है। मेरे गाव के चरवाहे भी डडा लेकर जानवरो के पीछे घूमते हैं आम और महुवे के कुञ्जों में बैठकर जुआ खेलते हैं वन बाग-तडाग निहारते रहते हैं और दांव पर दांव लगाते जाते हैं, और जुआ खेलने के इस सुख के मुकाबिले उन्हें तीनों लोकों का राज भी दिया जाय या 'आठहु सिद्धि नवौं निधि को सुख' पेश किया जाय तो वे उसे रसखान की ही तरह लेने से इकार कर देंगे।

जब जुए का दाव लगता है तो वातावरण बडा ही समत्वमय हो जाता है और चाहे वह अशर्फाबाद का सूदखोर हो या मौजा अतरौली का चरवाहा—दोनों का दाव बराबरी की हैसियत से देखा जाता है। इसी भावना को मैथिलीशरण गुप्त ने श्रद्धा विगलित वाणी से व्यक्त किया है

जय देवमंदिर देहली
सम-भाव से जिस पर चढ़ी
नृप-हेम-मुद्रा और रंक—
वराटिका।

पर चाहे हेम-मुद्रा वाला राजा हो, चाहे दस पैसे के सिक्के वाला रंक—दाव हार जाने पर दोनों को अपने दिमाग में एक ही जैसे सन्नाटे का अनुभव होता है। हारे हुए जुआरी की दशा का वर्णन महादेवी वर्मा का इन पंक्तियों में देखिए

आज क्यों तेरी वीणा मौन ?
शिथिल शिथिल तन,
थकित हुए कर
स्पंदन भी भूला जाता उर,
मधुर कसक-सा आज हृदय में
आन समाया कौन ?

पर हारे हुए जुआरी का एक दूसरा भी मूड है जिसमें वह न किसी से झगड़ा करता है, न बोलता है, न स्तब्ध होकर रह जाता है। कैलाश वाजपेयी की कविता 'जोड़ बाकी' (तीसरा अंधेरा, पृ० ३६) का जुआरी देखिए कैसे चलता है

बिना तरस खाये
बिना कोसे किसी को
रीढ़ो, बिना ऐंठे
सिर झुकाए हुए चलता हूं।

हारे हुए जुआरी को भगवान का नाम भी याद आता है, पर वह अपना आत्मसम्मान नहीं खोता। अज्ञेय की कविता 'मैंने ही पुकारा था' (सागर मुद्रा, पृ० १७) में चित्रित जुआरी की छवि देखिए

नाम नाम का एक तरह का सहारा था।
मैं थका-हारा था
पर नहीं था किसी का गुलाम।

रात भर जुआ खेलने के बाद थकावट, नींद और शांति की अनुभूति

निराला की प्रसिद्ध कविता 'जागृति में सुप्ति थी' में भी मिलती है

जाग्रत प्रभात में क्या शाति थी ?
जागृति मे सुप्ति थी,
जागरण-क्लाति थी।

भगवतीचरण वर्मा की प्रसिद्ध कविता 'हम दीवानो की क्या हस्ती' भी जुआरियो पर ही लिखी गई है। भरी हुई जेब लेकर खुश-खुश आए, ठर्रा पीकर मस्ती से दो चार दाव लगाए, खल्लास होकर आसू बहाते हुए, धूल उडाते हुए चल दिए, लोग कहते ही रह गए कि अरे, अरे

हम दीवानो की क्या हस्ती,
हैं आज यहा कल वहा चले,
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उडाते जहा चले,
आये बनकर उल्लास अभी,
आसू बनकर बह चले अभी,
सब कहते ही रह गये अरे
तुम कसे आये, कहा चले ?

अगली दीवाली पर जुए के आलम मे कविता का गहन अध्ययन करके मैं जो थीसिस लिखने जा रहा हू उसका यह साराश (सिनाप्सिस) भर है। पर यदि मेरी जगह कोई पाठक खुद यह काम करना चाहें तो मुझे और भी प्रसन्नता होगी, क्योंकि तब मैं अपना वक्त कविता के चक्कर मे नही गवाऊगा—उतने वक्त बठकर जुआ खेलता रहूगा तो अपने परिश्रम को ज्यादा सार्थक समझूगा।

कुत्ते और कुत्ते

बाजार मे आजकल हिंदुस्तानी-अंग्रेजी मे लिखी हुई बहुत सी किताबें आ गई हैं जो कुत्तो के—असली कुत्तो के—बारे में हैं। 'डॉग केयर, बाई ए डॉग लवर', 'शेफर्ड डॉग्स ऑफ जमनी, बाई ए डॉग लवर', 'ऑफ डाग्स ऐंड बिचेज, बाई ए डॉग लवर' आदि।

डॉग-लवर का असली नाम जी० प्रसाद है जिनका असली रूप घिरॉऊप्रसाद है। वे सीधे सादे, भोले भाले आदमी हैं। वक्त से जगे और वक्त से सोये, वक्त से हस और वक्त से रोये।' कभी गोश्त नही खाया, कभी शराब नही पी। रोज दो घटे पूजा करते हैं। एक ज्योतिषी स्थायी तौर पर पाले हुए हैं। साल मे दो चार महीने के लिए एक बाबा भी पाल लेते हैं। आधुनिकता के नाम पर उन्हे अंग्रेजी बोलने वाली बीवी, एक अच्छे दर्जी का सपक, मोटे शीशे का चश्मा और बवासीर-भर मिला है।

वे, पता नहीं क्यो और कैसे, इनकमटैक्स के महकमे के ऊचे अफसर हैं। इस सबके साथ, और इस सबके पहले (या इतिहास की दृष्टि से इस सबके बाद) व कुत्तो के विशेषज्ञ हैं।

उनके पुराने साथी जानते हैं कि आज से दस साल पहले वे सिर्फ अपने दफ्तर की बात करते थे, या अपने ससुर की, जो रेलवे में ऊचे

ओहदे पर हैं और जिनका वक्त ज्यादातर लोगो को झाड़ने में खर्च होता है। ('डैडी को आप जानते नही, रेलवे बोर्ड वालों को वही खड़े खड़े झाड़ दिया।) पर उसके बाद वे अचानक कुत्तों की बात करने लगे और 'डॉग-लवर' बन बैठे।

बात कुछ इस तरह से शुरू हुई

उनके बगले मे कुछ दिनों से एक पड़ोसी का कुत्ता आने लगा था। प्रारंभिक अवस्था में बहुत प्यारा लगता था। पता नही क्यो, पड़ोसी ने उसे अपनी दासता से छूट दे दी थी। इसीलिए ताजे ताजे स्वतंत्र हुए बहुत से देशो की तरह उसकी हालत बिगड़ रही थी। बिगड़ती हालत के सबूत म वह एक पैर से लगड़ाने लगा था। बाद में, तस्वीर मुकम्मल करने के लिए, उसके जिस्म पर एकाध ऐसे धब्बे प्रकट होने लगे—शायद कुसंग से या भुखमरी से—जिन्हें यदि वह कोई विकासशील देश होता तो अतर्राष्ट्रीय जगत मे दिखाकर बाहर से गेहू जरूर माग सकता था। पर सिर्फ कू-कू करके कोई कुत्ता एक देश नहीं बन सकता जसे कि कोई देश दिन रात निकम्मेपन और कू-कू करने का अभ्यास करके भी कुत्ता नही हो सकता। अत यह कुत्ता, पड़ोसी के घर से श्री जी० प्रसाद के बगले मे आकर नियमित रूप से कू-कू करने और उनकी लॉन पर प्लेग के चूहे की तरह कई गोल-गोल चक्कर लगाने के बावजूद, उनके यहा से रोटी का एक टुकड़ा तक नही खींच सका। कुत्ते और मि० प्रसाद के बीच 'अपरिचय का विध्याचल' खड़ा रहा उपेक्षा का ब्रह्म-पुत्र लहराता रहा। ऐसी उपेक्षा किसी विकसित और विकासशील देशो के बीच होती तो एक अतर्राष्ट्रीय तनाव का कारण बन सकती थी।

धीरे धीरे उसके घावो में इजाफा होने लगा, बाल झड़ने लगे लगड़ापन बढ़न लगा। फिर भी उसकी ओर श्री जी० प्रसाद मुखातिब नही हुए। तभी अचानक एक दिन एक नौजवान व्यापारी ने उनके अपरिचय के विध्याचल मे सुरग लगा दी।

यह नौजवान व्यापारी अपने बाप की तरह गद्दा मसनद 'श्री लक्ष्मी जी सदा सहाय', पेंचदार पगड़ी, गौ-ब्राह्मण की सेवा और भग

ठहाई के वातावरण की उपज तो जरूर था, पर 'माडर्न' हो जाने की वजह से उसके घर पर कुत्तों को छूकर नहाने की मजबूरी न थी। उसके दफ्तर में मेज-कुर्सिया, शीशे की दीवारें, इंटर-कॉम आदि का प्रवेश हो चुका था और उसे मालूम था कि अफसरो के यहा फूल पौधो, पिछली रात क्लब मे सुनी गई कव्वालियों, बाबा-बेबी की अंग्रेजी कविताओं, कब्जियत की दवाओ, पपलू और फलश के दाव-पेंचों, फौज से कम कीमत पर उड़ाई गई स्कॉच ह्विस्की की बोतलों, 'जमाना बड़ा खराब लग रहा है' और 'ईमानदार की मौत है' की तोतारटत आवृत्तियो और बगले की पालतू बिल्लियो और कुत्तो की बात करने से उसे घर का आदमी शुमार किया जाएगा। अत श्री प्रसाद इस नौजवान व्यापारी से मिलने के लिए जब बगले से निकलकर लान की तरफ आए तो उन्होंने उसे इस कुत्ते को पुचकारते हुए पाया। उसके बाद जब पारस्परिक अभिवादन और 'जमाना बड़ा खराब लग रहा है' और 'ईमानदार की मौत है' का आदान प्रदान हो चुका और दोनों लॉन मे पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए, तो नौजवान व्यापारी ने अपनी बात रोककर कुत्ते को फिर पुचकारा और कहा कि यह पेडिग्री वाला कुत्ता है। श्री प्रसाद ने कुत्ते को पहली बार गौर से देखा और उनका जी खिन्न गया, जवाब मे उन्होंने बताया कि डैडी—यानी ससुर के यहा बहुत बड़े बड़े कुत्ते पले हैं और उनके बगले पर तख्ती लगी है कि कुत्तों से होशियार रहो। नौजवान व्यापारी चुटकिया बजा-बजाकर कुत्ते को रिझाता रहा। पर वह इस प्रोत्साहन से लाभान्वित होने से इनकार करता रहा। आखिर मे नौजवान व्यापारी ने कहा कि यह बीमार मालूम होता है इसे अस्पताल ले जाना पड़ेगा, और आपको ऐतराज न हो तो मैं खुद मोटर पर ले जाकर इसे डॉ० हाफिज को दिखा दू, क्योंकि शहर म इस वक्त वही कुत्ते की बीमारी के एक्सपर्ट हैं और मि० टंडन, हजेला, शुक्ला, मिश्रा, बेदी, द्विवेदी, त्रिवेदी चतुर्वेदी क और मेरे कुत्तो का वही इलाज करते हैं।

जवाब मे मि० प्रसाद ने भूमिका के तौर पर कहा कि डैडी के कुत्ते बड़े तगड़े हैं और कभी बीमार नहीं पड़ते। इसके बाद उन पर

सचाई का दौरा पड गया। उन्होंने फूहडपन से कहा, 'आप इस कुत्ते को जितना चाहें प्यार करें, पर यह कुत्ता मेरा नही है।'

सट्टेबाजी चेहरे की मासपेशियो को काबू मे रखने की आदत डलवा देती है। व्यापारी क मन को धक्का लगा पर उसन पहल की तरह उत्साह स कहा कि यह आपक बगले म रहता है तो चाहे आपका हो या किसी और का, इसे बगल की हैसियत स ही रहना पडगा।

इसके बाद कुत्ते का कायदे स इलाज शुरू हो गया। दखत-देखते वह विकासशील देशो की तरह पनपन लगा। बाहरी लाग आ-आकर उसे सेहत के सर्टिफिकेट दन लग। यहा तक कि मि० प्रसाद ने कुछ दिन बाद कुत्ते को अपना लिया, बच्चो ने उससे खेलना शुरू कर दिया और व्यापारियो के गुट म कुत्ता एक एस मजमून के रूप मे शुमार कर लिया गया जिस पर उनम जमाना खराब लगा है' और ईमानदार की मौत है के बाद, अगर डडी का जिक्र न आ गया तो, बात की जा सकती थी।

पर एक दिन वह कुत्ता मि० प्रसाद के बगले के सामने ही एक व्यापारी की मोटर स कुचलकर मर गया। उस व्यापारी का व्यापार तो पुराना था पर अमीरी नयी थी। इसलिए वह खराब तस्वीरें और गलत गानो के रिकाड खरीदता जरूरत से ज्यादा शानदार कपडे पहनता बिना किसी घनिष्ठता के ऊचे अफसरो और नेताओं को शुरू के नाम से पुकारता। ठीक स चलाना न जानते हुए भी अपनी मोटर चलाता। इसलिए जिस वक्त वह अपनी मोटर पीछे की आर चलाते हुए श्री मि० प्रसाद के बगले से निकला, उसी वक्त यह कुत्ता गाडी की चपेट म आ गया और आत ही हैपी हटिंग ग्राउडस म पहुच गया।

मि० प्रसाद को स्वाभाविक था कि दुख हो। वही व्यापारी के लिए भी स्वाभाविक था। यह भी स्वाभाविक था कि व्यापारी किसी भी नुकसान को पूरा न होने वाला नुकसान न माने। इसलिए उसने एक वसा ही बल्कि उसस भी उम्दा कुत्ता खरीदा और उसे मि० प्रसाद के सामने क्षमा-याचना के साथ, मुआवजे के तौर पर, पेश किया। उन्होने उसे भले आदमी की तरह स्वीकार किया।

इधर शहर के व्यापारियों में इस दुर्घटना की प्रशंसा फैल गई थी। इसलिए दूसरे एक व्यापारी ने आकर उन्हें बताया कि मेरी कुतिया ने अमुक वंश के पिल्लों को जन्म दिया है और उनमें से एक पिल्ला आपका है। दूसरे व्यापारी की कुतिया ने तमुक वंश के पिल्लों को जन्म दिया था। तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें व्यापारी की कुतिया ने क्रमशः तमुक, दमुक, स्मुक, लमुक और हेमुक वंश के पिल्ले पैदा किए थे। अतः उन सभी व्यापारियों ने उन्हें एक या दो या तीन पिल्ले पेश किए और वे उन्हें अपनी स्वाभाविक उदारता से स्वीकार करते गए।

दान लेने से दान देने का जोश बढ़ा। जब उनके पास दर्जनों कुत्ते हो गए तो वे उन्हें अपने दोस्तों में—खास तौर से दूसरे शहरों के दोस्तों में—बाँटने लगे। दूर दूर ट्रंक-कॉल करके वे अपने दोस्तों को बताने लगे कि भाई साहब मेरे पास एक अमुक पिडिग्री का कुत्ता आया है और जरूरत हो तो आपके पास भेज दूँ। इस तरह इस शहर से श्री जी० प्रसाद की मार्फत कुत्ता निर्यात का काम शुरू हुआ और यह शोहरत होने लगी कि वे 'डाग लवर' हैं। कभी कभी यह भी होने लगा कि श्री प्रसाद के दोस्त से उसके किसी अपने दोस्त ने कहा कि भाई, बच्चे पीछे पड़े हैं मुझे एक पेकिनीज चाहिए और मि० प्रसाद के दोस्त ने कहा कि आज ही मैं उसको ट्रंक काल करूँगा और फिर मि० प्रसाद ने उस व्यापारी से जिसकी कुतिया अब हर दूसरे महीने पिल्ले पैदा करने लगी थी दो पिल्ले मँगाकर उसके घर उसके दोस्त के पास भेजने के लिए भेज दिए।

धीरे धीरे कुत्तों के बारे में समझने-बूझने का शौक भी पैदा हुआ और एक दिन शहर का एक मशहूर बुकसेलर आया और कुत्तों के साहित्य से सम्बन्धित दस बारह किताबें उन्हें पकड़ा गया। दूसरे बुकसेलर को मि० प्रसाद की किताबों के सेट में कुछ कमी खटकी और उसने उसमें तीस पच्चीस किताबें और जोड़ दीं। तीसरे ने कुत्तों के बारे में मासिक चार विलायती पत्रिकाएँ मँगाने का इंतजाम कर दिया। फिर फोटोग्राफी के सामान के दूकानदार ने उन्हें कई किस्म के कुत्तों

के कई फोटो दिए, अत मे एक पब्लिशर ने इन सब प्रयासो का समन्वय और सामजस्य, यानी कोआर्डिनेशन और डब-टेलिंग' की। पब्लिशर इनकमटक्स के मामलो मे उलझकर उसी अनुपात से देश मे कुत्ता साहित्य की कमी का अनुभव कर रहा था। उसने निवेदन किया कि मि० प्रसाद, आप कुत्तो पर दो एक किताबें लिखकर मुझे दीजिए। इससे देश की एक भारी कमी पूरी हो जाएगी।

उन्होने ऐतराज किया। बोले कि मैं सरकारी काम, पूजा पाठ, गिरिस्ती, ज्योतिष और स्वामी सत्यानद में फसा रहता हू। इडी भी लबी छुट्टी लेकर आने वाले हैं। पर पब्लिशर ने जिद पकड ली। कहने लगा कि अग्रेज अफसरो ने यहा की चिडिया और पेड-पौधों पर हजारो किताबें लिखी हैं। उसने आश्वासन दिया कि आपकी अग्रेजी बहुत उम्दा है और आपको सिर्फ किसी स्टेनोग्राफर को बोलते चले जाना है और मिस लिली, जो दो साल पहले मिस मसूरी चुनी गई थी हमारे यहा स्टेनोग्राफर हैं और मैं उन्हें इस काम के लिए छोड दूगा। पर वे यही कहते रहे कि हमे फुरसत नही है। तब उसने कहा कि स्टेनोग्राफर के अलावा मैं फला डिग्री कालिज के फला लेक्चरर को भी आपकी खिदमत मे लगा दूगा और वे जैसे 'एक ग्रेजुएट' के नाम से कुजिया लिखते है वैसे ही डॉग-लवर के नाम से वे आपकी किताबें भी लिख देंगे। इस तरह मजबूर किए जाने पर वे मजबूर हो गए और दखते-देखत 'ऑफ डॉग्स ऐंड बिचेज, बाई ए डॉग-लवर छपकर बाजार में आ गई।

मि० प्रसाद का कुत्ता कॅरियर यहा से सुगठित हुआ। एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी, चौथी, पाचवी किताब छपती चली गई और वे नौकरी पेशे के बाहर भी कुत्ता विशेषज्ञ मान लिए गए। उन्हें सभा सोसायटियों में व्याख्यान के लिए बुलाया जाने लगा।

पर उन्हें भाषण देने म हिचक होती थी। वास्तव मे अभी तक उन्होने कोई गैर-सरकारी भाषण दिया ही न था। इसके लिए मिस लिली और एक ग्रेजुएट से काम नही चलता था। पर अचानक—इसी को भाग्य कहते हैं—एक दिन वे बोलने लगे। हुआ यह था कि उनके

पडोसी ने उनका अपमान कर दिया। पडोसी रेलवे का एक बडा अफसर था और डैडी के रिश्ते से इनके यहा उसका काफी आना-जाना था। वह कई बार कुत्ता का मजाक उडा चुका था। एक दिन क्लब में, जब मि० प्रसाद कोकाकोला पी रहे थे और वह ह्विस्की पी रहा था, बात कुत्ता और बिल्लियो पर चल निकली। उसने मि० प्रसाद पर सीधे हमला किया और कहा कि कुत्ते पालने वाले खुद कुत्ते हो जाते हैं और कोई प्यारी चीज होती है तो बिल्ली होती है।

मि० प्रसाद को अब तक कुत्तो से सचमुच का प्रेम हो गया था। वे गुस्से मे कुर्सी से उठ खडे हुए। वे अपने पडोसी के बारे में उसी तरह जानते थे जसे कि हर समझदार को अपने पडोसी के बारे मे जानना चाहिए। उस जानकारी का पूरा उपयोग करके और पडोसी का अपने ससुर का हम उम्र होने के कारण आदर के साथ सबोधित करते हुए उन्होंने कहा, 'जनाब, बहस कुत्तो और बिल्लियो की नही सिद्धात की है। पहले सैद्धातिक स्तर पर देख लिया जाए कि हमारी रुचियां यानी हॉबीज के पीछे कौन सी प्रेरक शक्तियां काम कर रही हैं। प्राय होता यह है कि हमें जो चीज यू ही मिल जाती है और मिलती रहती है उसी में हमारी रुचि पैदा हो जाती है। रुचियों के विकास का इस दृष्टि से भी अध्ययन होना चाहिए। विकासशील देशो में आपने देखा होगा, जरूरी चीजो को छोडकर इसी तरह गैरजरूरी चीजें बनने लगती हैं। हमारे यहा कमरा, ट्राजिस्टरों, टेप रिकार्डरा, रेफ्रिजरेटरा की भरमार क्यो है? इसलिए कि शुरू-शुरू मे यहा के लोग यूरोप अमरिका या जापान गए और ये चीजें पॉकेट में या कम दाम पर ले आए। बाद में इन्हीं चीजों के इर्द-गिर्द हमारी रुचियो का विकास हुआ।'

अचानक उन्हें लगा कि लोग चुप होकर सुन रहे हैं और वे ध्यानपान ले रहे हैं। वे रुके, पर एक बार फिर हिम्मत करके कहने लगे यही व्याख्या कुत्ता और बिल्लियां पर भी लागू होती है। यह तो सयोग की बात थी कि शुरू-शुरू में मेरे यहां एक कुत्ता आ गया था और विज्ञापन आने के पहले मि० हाटन ने अपनी बिल्लियां

आपको दे दी थीं पर यह न भूलिये कि वे बिल्लियां मेरे यहां भी आ सकती थीं और यह कुत्ता आपके यहां जा सकता था। इसलिए हमें कुत्तों और बिल्लियों के बारे में प्रतिबद्ध होकर बात न करनी चाहिए। असल बात डॉर्विज के पक्षियों के विकास की थ्योरी को लेकर चली थी, जिसके बारे में ।'

पड़ोसी तो यही समझा कि कोकाकोला पीकर भी उन्हें नशा हो गया है, पर उसी के दूसरे दिन वे रोटरी क्लब में 'डॉग-केयर' पर भाषण देने के लिए बुलाए गए। कुत्ता विशेषज्ञ की हैसियत से अब उन्हें काफी बड़े पैमाने पर स्वीकार कर लिया गया। उनको कुत्ता-प्रदर्शनियों के उद्घाटन के लिए और उनकी बीवी को पुरस्कार-वितरण के लिए बुलाया जाने लगा। वे जहां-जहां तबादले पर गए वहां-वहां उनकी अध्यक्षता में कुत्ता-कल्याण समितियां बनाई गईं। सफलता की इन मंजिलों को पार करके आखिर में उन्हें यह आध्यात्मिक अनुभव हुआ कि उनके भी जीवन का एक अर्थ है और उस अर्थ का नाम कुत्ता है।

आह ! वे दिन

सवेरे ही सवेरे वे मेरे बगले के सामने से निकले। नगे पाव, जिस्म पर रुईदार बडी, ऊपर से चेस्टर, सिर पर आदमी को बदर बना देने वाला कटोप, मुह में नीम की दातुन, जिसे बडी फर्राहट से दातो पर नचा रहे थे।

पहले कचहरी के मगरमच्छ थे। अब रिटायर होकर भलमनसाहत की बारिश मे भीगी बिल्ली बन गए हैं।

मुझे देखकर ठिठके। दातुन की अड़चन के बावजूद मुह से "हो, हो, आप ! ' के फौवारे छोड़े। फिर मेरे बगले के अदर आकर बोले, ' आप भी कहते होगे कि बुड्ढा कैसा कन्नी काटकर निकला जा रहा है।"

मैंने उन्हे यकीन दिलाया कि मैं सचमुच अपने आप से यही कह रहा था। इसी पर उन्होंने मेरे बगले को अपना बगला समझकर पुरानी वफादारी का एक नमूना पेश किया। दातुन को हाथ मे लेकर, मुह से लेकर हृदय तक की सारी तरलता क्रिसैंथमम के एक गमले में मुक्तकठ से गिराते हुए बाल, 'वाह ! बगला तो आपने ऐसा सजाया है कि— वाह !"

सीधा सादा लॉन था। उसके चारों कोनों पर नैस्टर्शियम की

आपको दे दी थीं पर यह न भूलिये कि वे बिल्लियां मेरे यहां भी आ सकती थीं और यह कुत्ता आपके यहा जा सकता था। इसलिए हमे कुत्तों और बिल्लियो के बारे मे प्रतिबद्ध होकर बात न करनी चाहिए। असल बात हॉबीज के, रुचियों के विकास की थ्योरी को लेकर चली थी जिसके बारे में ।'

पडोसी तो यही समझा कि कोकाकोला पीकर भी उन्हे नशा हो गया है पर उसी के दूसरे दिन वे रोटरी क्लब मे 'डॉग-केयर' पर भाषण देने के लिए बुलाए गए। कुत्ता विशेषज्ञ की हैसियत से अब उन्हें काफी बड़े पैमाने पर स्वीकार कर लिया गया। उनको कुत्ता प्रदर्शनियो के उद्घाटन के लिए और उनकी बीवी को पुरस्कार-वितरण के लिए बुलाया जाने लगा। वे जहा-जहा तबादले पर गए वहा-वहा उनकी अध्यक्षता में कुत्ता-कल्याण समितिया बनाई गईं। सफलता की इन मजिलो को पार करके आखिर मे उन्हे यह आध्यात्मिक अनुभव हुआ कि उनके भी जीवन का एक अंश है और उस अंश का नाम कुत्ता है।

आह ! वे दिन

सवेरे ही सवेरे वे मेरे बंगले के सामने से निकले। नंगे पांव, जिस्म पर रुईदार बंडी, ऊपर से चेस्टर, सिर पर आदमी को बंदर बना देने वाला कंटोप, मुंह में नीम की दातून, जिसे बड़ी फर्राहट से दांतों पर नचा रहे थे।

पहले कचहरी में मगरमच्छ थे। अब रिटायर होकर भलमनसाहत की बारिश में भीगी बिल्ली बन गए हैं।

मुझे देखकर ठिठके। दातून की अड़चन के बावजूद मुंह से "हो, हो, आप!" के फौवारे छोड़े। फिर मेरे बंगले के अंदर आकर बोले, "आप भी कहते होंगे कि बुड्ढा कैसा कन्नी काटकर निकला जा रहा है।"

मैंने उन्हें यकीन दिलाया कि मैं सचमुच अपने आप से यही कह रहा था। इसी पर उन्होंने मेरे बंगले को अपना बंगला समझकर पुरानी वफादारी का एक नमूना पेश किया। दातून को हाथ में लेकर, मुंह से लेकर हृदय तक की सारी श्रद्धा विशेषणों के एक वाक्ये में मुक्तकंठ से गिराते हुए बोले, "वाह! बंगला तो आपने ऐसा बनाया है कि— वाह!"

सीधा-सादा लॉन था। उसके चारों कोनों पर नेस्टर्शियम की

इसकी क्या जरूरत कि दो मिर्चों के लिए अपने लॉन को खोदकर तालाब बना दें ?

अचानक दूसरी ओर मुह उठाकर वहीं से वे एकदम से चीखे, 'रुको, रुको, आते हैं। आ रहे हैं। गला न फाड़े डालो, हरामी कहीं के ।"

फिर नगे पावों का प्लग घास से लगाकर सुबह की ताजगी की करेंट दिमाग तक खींचते हुए वे जिधर से आए थे उधर ही चले गए। जाते जाते मुलायमियत के साथ मुझ से कहते गए, "आप ही का लड़का है। पुकार रहा है।"

मनीषीजी की एक रात

पूर्वार्द्ध

खुदा ने कहा, 'रोशनी हो', और रोशनी हो गई।

वे इस शहर में इतिहास-समिति की वार्षिक बैठक के अवसर पर आए हुए थे। हर साल की भांति इस साल भी उनसे आशा की गई थी कि वे किसी सनसनीखेज तथ्य का उद्घाटन करेंगे। और देखो, उन्होंने ऐसा ही किया।

पिछले साल उन्होंने भावात्मक समन्वय के हिसाब से सिद्ध किया था कि औरंगजेब और शिवाजी बड़े गहरे दोस्त थे। उनके ऊपर अब तक लिखे गए इतिहास को उन्होंने फरेब बताया था, उनके इतिहासकारों को उन्होंने कुछ ज्यादा न कहकर सिर्फ पेशेवर और भावुक—इन दो चुटकियों में उड़ा दिया था। इस साल उनके सामने एक दूसरी सामाजिक चुनौती थी।

आंख से चश्मा उतारकर उन्होंने रूमाल से चेहरा पोंछा। बड़ी-बड़ी नंगी आंखों से उन्हें हाल में मधुमक्खियों जैसे लगभग एक हजार अस्पष्ट, अधूरे चेहरे दिखाई दिए। उनके मन में एक विशेषण बिना किसी को लक्ष्य किए गुब्बारे जैसा फूलकर फूटा 'टुच्चे'।

अब उन्हें अपनी बात बिना किसी झिझक के कहने में आसानी हो

गई। इस साल की सामाजिक चुनौती मंजूर करते हुए उन्होंने कहा, 'भारतवासी कभी किसी से नहीं हारे। विदेशी इतिहासकारों ने हम एक गिरी हुई, कई बार की पराजित जाति बताने की कोशिश की है। वे पर जाने दीजिए। मैं उनके बारे में नहीं, पहले एक घटना के बारे में अपना पर्चा पढ़ूंगा।

'मेरा मतलब भारत पर सिकंदर के आक्रमण से है।"

लोगों ने तालियां पीटीं। उन्हें यकीन हो गया, अब वे बिना समझे हुए मेरी बात सुनेंगे, तालियां पीटेंगे। उन्होंने तालियों के बुझने का इंतजार किया। फिर मौका देखकर वे श्रोताओं पर सिकंदर की तरह हमला करने को तैयार हुए। इत्मीनान से माइक के नजदीक आकर वे अपना गाल बड़े प्यार से सहलाने लगे। उसे एक ऐतिहासिक तथ्य बनाकर उन्होंने कहना शुरू किया, 'पुराने पेशेवर इतिहासकारों ने हमें बताया है—और यही हम सब बचपन में पढ़ते हैं—कि हम आपस की फूट के कारण सिकंदर से हार गए। पर मैंने, आप देखेंगे, इस पर्चे में साबित करने की कोशिश की है।'

सामने की कुर्सियों पर उन्हें संस्कृति और अनुसंधान जैसे बड़े-बड़े लफ्जों से जूझने वाले कई बड़े-बड़े अफसर दिखाई दिए। उनके लाभ के लिए उन्होंने देसी भाषा को छोड़कर विलायती में कहा, ' मैंने साबित करने की कोशिश की है कि, नंबर एक, हममें आपस में फूट नहीं थी, आज की तरह हम तब भी एक थे, और नंबर दो, कि हम यूनानियों से कभी नहीं हारे। हमने मिलकर सिकंदर का मुकाबला किया था, उसे हराया था।

एक जगह उन्हें काफी धुआं-सा उठता दिखाई दिया, किसी ने शायद सिगार का जोरदार कश लिया हो। एक आवाज आई, 'और पोरस ? पोरस कैसे पकड़ा गया था ?'

"पोरस कैसे पकड़ा गया था ?" उन्होंने मजाक में यह सवाल दोहराया। वे हंसे। दूसरे की बात की दुम को अपनी बात की नकेल बनाने वाली आदत उन्होंने प्रागैतिहासिक काल में, यानी जब लोग उन्हें मौलिक हृदयवान समझते थे, सीखी थी। प्रागैतिहासिक काल अब

अनुपयोगी था, खत्म हो चुका था, पर उस आदत की उपयोगिता अब भी थी।

वे कहते गए

"पोरस तो पेशेवर इतिहासकारों की कलम की नोक से पकड़ा गया था।" वे असर के लिए रुके, "उसे भूल जाइए। इस पर्चे में मैंने बताया है कि पोरस के दरबार में खुद सिकंदर को गिरफ्तार करके लाया गया था। चौंकिए नही, यह तर्क की, प्रमाण की बात है। "

वे अपना नया माल बेचते गए " पर सिकंदर के पक्ष मे यह बताना आवश्यक है कि मौत का सामना होने पर भी वह हिचका नही। वह टूट गया पर झुका नही। पोरस ने उससे पूछा, 'बोलो, तुम्हारे साथ कैसा सुलूक किया जाए ?' इस पर सिकंदर ने वही प्रसिद्ध जुम्ला कहा, 'जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।"

लोग एक क्षण चुपचाप बैठे रहे। फिर अचानक सभी को कुछ याद आया तालियां।

वे अपना चश्मा पोंछने लगे। बीच से एक दुबला-पतला, धोती-कुर्ते वाला आदमी सिगार फूंकता हुआ उनके सामने से निकला। उनके मुंह पर धुआं छोड़ता हुआ चला गया। वे मजे मे मुस्कराए।

उन्होंने अंग्रेजी मुहावरे मे सोचा कि ईश्वर अपने स्वर्ग मे है और दुनिया में सब कुछ ठीक है। इत्मीनान से उन्होंने अपना पर्चा पढ डाला। पर्चा, कहने की जरूरत नहीं अंग्रेजी मे था। उसमे सकडों इतिहासकारों के नामों का उल्लेख था। हजारों उदाहरण थे। मनीषी लोग जैसा लिखते हैं, बिल्कुल उसी मॉडल पर था। उसमे कही भी कोई सुराख नजर नही आता था।

लोग कुछ देर पर्चे की विद्वत्ता से सहमे बैठे रहे। फिर तालियां बजाते रहे।

"सवाल ? किसी को सवाल पूछने हैं ?"

अध्यक्ष के इस सवाल पर एक बुजुर्ग एक जगह खड़ा हो गया। बोला, 'पहले अपना परिचय दे दूं। मैं पेशेवर इतिहासकार हूं।"

वे मुस्कुराये, "मैं जानता हूं।"

अध्यक्ष ने कहा, "आप सवाल पूछिए।"

"इस निबंध से हम लोगों को गहरा धक्का लगा है।"

उन्होंने कहा, 'इस निबंध का यही उद्देश्य था।"

अध्यक्ष ने बुजुर्ग को कुछ और बोलने के पहले टोका, "सवाल! सिर्फ सवाल पूछिए। समीक्षा नहीं होनी चाहिए।"

"क्यों नहीं होनी चाहिए?"

"सवाल। सवाल पूछिए। समीक्षा नहीं।"

"मैंने सवाल ही पूछा है। मेरा सवाल है, समीक्षा क्यों नहीं होनी चाहिए?"

अध्यक्ष के कुछ बोलने के पहले ही वे माइक के नजदीक मुंह लाकर बोले, "वह इसलिए मेरे दोस्त, *कि सवाल अभी मेरी मौजूदगी ही में हो* सकता है। समीक्षा तो बाद में, मेरी पीठ पीछे भी हो सकती है। जैसा कि लोग पिछले बीस साल से करते रहे हैं।"

फिर सवाल नहीं हुए। सिर्फ तालियां हुईं। लोग यह जानकर कि वे हमेशा एक थे और कभी किसी से नहीं हारे थे, बच्चों को पीटने पड़ोसियों के खिलाफ झूठी गवाही देने, रिश्वतखोरों के सामने दांत निकालने की घटनाएं भूलकर अकड़ते हुए अपने-अपने घरों की ओर चल दिए।

शाम कामयाब रही।

उत्तरार्द्ध

रात शहर के सभी प्रमुख मनीषियों ने उन्हें शहर के सबसे प्रमुख होटल में दावत दी। वे मनीषापूर्वक शराब पीते रहे। जब शराब और मनीषा अपने वजन और फैलाव में इतनी घुलमिल गईं कि किस बात के नीचे मनीषा है और किसके नीचे शराब, यह जानना कठिन हो गया, तब उन्होंने तय किया कि इस भावात्मक समन्वय के बाद खाना खाया जाए।

वे सभी सफल मनीषी थे और ऊंची मनीषा की जहां-जहां दरकार थी वहां वे उस माला से, थोक और खुदरा, सभी तरह से

पहुचाते चले आ रहे थे। जरूरत पडने पर, बिना विदेशी मुद्रा की दिक्कत महसूस किए, वे विदेशी मनीषा का आयात भी कर लेते थे। इसस वे सभी करीब करीब अतर्राष्ट्रीय हो गए थे और इस वक्त उनके मजाक, उनकी महत्वाकाक्षाए और उनके खाने का चिट्ठा—सभी कुछ अतर्राष्ट्रीय हो रहा था।

खाने के बीच स ही मनीषीजी के पेट मे एक हल्की सी चुभन होने लगी थी, पर उसका पूरा अनुभव उन्हें खाने के बाद लाउज मे हुआ। ज्यादातर लोग कॉफी पी रहे थे। जो कॉफी पी रहे थे वे मामूली मनीषी लोग थे, वे ज्यादा से ज्यादा सिकदर और पोरस की कुश्ती बराबरी पर छुडा सकते थे। मनीषीजी ने सिकदर को पोरस से हरा दिया था। वे खाने के बाद ब्राडी पी रहे थे।

धोती-कुर्ते मे एक पतला जिस्म दिखाई दिया। एक क्षण के लिए उनकी भौहे चढ गईं। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा, "प्रोफेसर राय, मैं यहा हू। आइए, जी भर कर धुआ छोड लीजिए। शाम वाला धुआ मुझे मिला नही था।"

प्रोफेसर राय सिगार पीते हुए उनके आगे आकर खडे हो गए। बोले, "तुम्हारी आज वाली थ्योरी ताश का महल है। उसे गिराने के लिए धुए से ज्यादा किसी वजनी चीज की जरूरत नही है।"

'मुझ पर अपने लफ्ज नही अपना धुआ फेंकिए। आपने लीकाक का मजमून नही पढा, आक्सफोर्ड ऐज आई सी इट।"

उनके पास कोई महिला आकर खडी हो गई थी। उन्होने समझाया, 'लीकॉक ने कहा है, आक्सफोर्ड मे विद्यार्थी पर पुराने प्रोफेसर जितना ही धुआ फेंकते हैं—विद्यार्थी जितना ही धुआता है—उतना ही काबिल होता है।"

महिला हसी।

"मैं वहा का धुआ पहल खा चुका हू। अब प्रोफेसर राय के सिगार का धुआ खाना चाहता हू।'

प्रोफेसर राय चलने को हुए। बोले, 'कालिख की वैसे ही इफरात है। तुम्हे अब धुए की और जरूरत नहीं है।'

उन्हें बिल्कुल बुरा नहीं लगा। जब ये यूनिवर्सिटी में थे, कई बार विदेश जा चुके थे। बाद में इस इतिहास-समिति में आए। यहां रहते हुए उन्होंने भूगोल के कई चक्कर लगाए। कई जगहों पर वे कई तरह के आदमियों से मिले थे और उनका अनुभव था कि जानवरों की बात और है, पर आदमियों की बात का कभी बुरा नहीं मानना चाहिए।

राय महाशय के टलते ही वे उस अधेड़ महिला में गुम हो गए। उनकी जिंदगी कितनी वीरान और आवारा रही, इस मजमून पर वे उसे एक सारगर्भित व्याख्यान सुनाने लगे। तभी जिस चुभन का पहले जिक्र आया है, उसका एक सीधा-सा अनुभव उनके पेट में दुबारा हुआ। कोई भी डाक्टर उस चुभन का मतलब या इलाज नहीं बता सकता था, पर यह उनकी पुरानी तकलीफ थी और अभ्यास के सहारे वे इसे अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने महिला से माफी मांग ली। वे बची हुई व्हाकी एक सांस में निगल गए और जल्दी-जल्दी फिर से बधाइयां लेने और धन्यवाद देने के लिए मेजबानों की ओर चल दिए। उनके पेट की चुभन अब फैलकर फेफड़े की ओर बढ़ रही थी और दूसरी ओर से घूमकर रीढ़ की हड्डी तक जा रही थी। उनके पैरों की नसें तनी-सी जा रही थीं।

मेजबानों ने कहा, 'अभी से ?"

गुडनाइट गुडनाइट। मुझे जरूरी, बहुत जरूरी काम है।"

किसी ने उन्हें उनके होटल तक पहुंचाने के लिए कहा। उन्होंने टूटती आवाज में माफी मांगी। बोले, 'मैं एक दोस्त की कार लाया हूं। चलते चलते उन्होंने महसूस किया, उनके पांवों की पिंडलियां पत्थर जसी हुई जा रही हैं।

जाड़ा था। चेस्टर से अपने जिस्म को ढके वे कार तेजी से चलाकर एक वीरान सड़क पर आए। सड़क छायादार थी और बत्तियां दूर-दूर थीं। वे सीटी बजाने लगे पर सीटी ठीक से नहीं निकली। एक जगह उन्होंने गाड़ी रोकी फिर थोड़ा आगे बढ़े। आखिर में एक पेड़ के नीचे गाड़ी खड़ी करके वे उतर पड़े। उन्होंने सिगरेट जलाई। एक हाथ पट की जेब में डाले हुए, दूसरे से वे अपना गाल सहलाने लगे। फिर

फुटपाथ पर लबे-लबे डगो मे टहलने लगे। भर्राये गले से उन्होंने एक गाना भी निकाला पर वह उन्हें कुछ बेगाना-सा जान पडा। वे चुप हो गए। उन्हें लगा कि ब्राडी कुछ ज्यादा चढ गई है। लापरवाही से उन्होंने कहा, "उह् !" कुछ दूरी पर बिजली के एक खभे को देखकर उन्होंने आँखें सिकोडीं। अचानक उनकी पिंडलिया और कस गईं। उनका पूरा जिस्म एक चुभन बन गया।

ढीले सडिलो की अस्वाभाविक-सी आवाज निकालती हुई एक लडकी उनके पास से निकली। उन्होने अग्रेजी मे कहा, 'इतनी देर बाद।"

लडकी ठिठकी, फिर फुसफुसाकर बोली, "चुप। पुलिस।'

वे कुछ सहम से गए। उन्हें अचानक प्रोफेसर राय याद आ गए। लडकी को अदर लेने के लिए उन्होंने तेजी से कार का दरवाजा खोला। वे प्रौढ अवस्था के महापुरुष थे और उन्हें जो कुछ सुदरता मिलनी थी, वह शरीर की नही, मनीषा की माफत मिली थी। किसी लकीर के आगे बडी लकीर खीचकर पहली लकीर को छोटा किया जा सकता है। इस हिसाब से वह लडकी उनके सामने कम-उम्र और खूबसूरत थी। गाडी सावुनदानी जैसी थी और छोटी थी। वे सडक पर कुछ आगे निकल आए जहा बिजलियो के खभे और भी दूर-दूर हो गए थे। उन्होंने गाडी को सडक से उतारकर एक पेड के नीचे खडा कर दिया।

लबा-चौडा मैदान था और अधेरी रात थी। इस वक्त उसमे बायरन, शैली और कीटस की आत्माए चिरतन रहस्य और आनद की मुद्रा मे विचर रही थी। दिन को मैदान का एक दूसरा उपयोगितावादी पहलू सामने आता था जब वहा खच्चर और गधे घास चरने की कोशिश करते थे, लडके क्रिकेट खेलते थे। अपने समूचेपन मे मैदान कला की आनदपूर्ण व्यथता और उपयोगिता इन दोनों पहलुओ की खाना पूरी करता था।

मनीषीजी चस्टर जमीन पर बिछाए लेटे हुए थे। उनके जिस्म की चुभन खत्म हो गई थी। लडकी अर्नेस्ट हेमिग्वे की किसी नायिका की तरह उनकी छाती से चिपकी हुई थी। उनकी सभी ऐतिहासिक गवे-

षणाओ में यही एक ऐसी थी जिसे वे इस वक्त मुस्कराकर एकदम से 'हवग' नहीं बता सक्ते थ । उन्हें अब अपने से बडा प्यार छूट रहा था और जम्हाइया आने लगी थीं । इस भाव के उदित होते ही वे समझने लगे थे कि उनके लिए लडकी का उपयोग अब समाप्त हो रहा है । उन्होंने प्रेमोत्तरकालीन बातचीत शुरू की । वे उसे इतिहास समझने लगे ।

लडकी खिसककर उनके और पास आ गई और फुसफुसाकर बोली, "क्या तुम भी पुलिस से डरते हो ?"

अपने देश के गिरे हुए बौद्धिक स्तर पर उन्हें सचमुच ही अफसोस हुआ । पोट सईद के एक चक्ले मे उन्होंने एक बार मिस्र के पिरामिडो की बात की थी । वहा उस लडकी ने उनकी बात समझ ली थी और जवाब मे एक शब्द कहा था, 'क्लियोपेट्रा ।"

उनकी ब्रांडी बोलती गयी, तुम कुछ नही समझी । अच्छा, कोशिश करो समझो । मैंने आज साबित किया था तुम नही समझोगी । मैं तुम इतिहासकार का मतलब जानती हो ? '

लडकी ने जम्हाई लेते हुए कहा मैं सिफ इतना जानती हू कि तुम चिडी के गुलाम हो । सिफ बकबक करना जानते हो ?

उन्होने लडकी की पसलियो मे उगलिया गडाइ । वह उनका मजाक था जिसपर वे खुद जोर से हस । लडकी ने घबराकर कहा 'चुप ! पुलिस ! उसकी घबराहट से वे खुद घबरा गए । न जाने क्या उन्हें प्रोफेसर राय की दुबारा याद आ गई । व उठकर बैठ गए ।

उन्होंने धीरे से कहा, तुम नही समझोगी ।'

अधेरा था । उन्होंने चारो ओर निगाह घुमाई । लडकी भी उठकर खडी हो गई थी । वे खुश हुए कि जो भी हो सेक्स का अध्याय ढग से समाप्त हुआ । सेक्स और धम और युद्ध—इन सबके साथ या ही होता है । इनका काई तक नही, इसलिए इनम कही न-कही कुछ रह जाता है । जैसा भी हो, मनीषियो की यही थोडी-सी निर्बौद्धिक लीलाए हैं । उन्होंने सोचा, इस पर एक टिप्पणी लिखी जा सकती है ।

पर मन म उन्हें कुछ खटक-सा रहा था । कधे पर चेस्टर डाले,

कुछ लगडाते से वे कार की ओर लौटे। उन्होने लडकी को अपराधी बनाते हुए कहा, "तुम मुझे बिलकुल नही समझ पाई।"

"सभी शराब पीकर इस तरह की बात करते हैं।"

अचानक उन्हें यह सभावना ठीक जान पडी। वे चुप हो गए। कार के पास उन्होंने लडकी से पूछा, "तुम्हे कहा छोड दू।"

"यहीं मैदान के उस पार मेरा घर है।"

'वेरी गुड।"

वे बटुए से अदाज लगाकर नोट निकालने लगे।

अचानक नोटो को हाथ से छूते ही उनके दिमाग से ब्राडी और गैर जिम्मेदारी का सारा असर खत्म हो गया। उन्हे आज का पर्चा याद आ गया।

'फिर कहा मिलोगे ?" लडकी ने पूछा। सरसराते नोटों का स्पर्श उनकी उगलियों पर अब भी ताजा था, लडकी का फिर से ग्राहक बनने की बात उनके दिमाग से निकल चुकी थी।

क्योकि कल सबेरे से उन्हे खुद अपने ही ग्राहको से मिलना होगा। यह याद आते ही उन्हे थकान ने घेर लिया। गाडी स्टार्ट करके लडकी के सिर पर एक होनहार बाप की तरह उन्होने प्यार से हाथ फेरा और सोचने लगे कि कल के काम के लिए उन्हे अब जल्दी से आराम करना चाहिए, क्योंकि इतना इतना कर चुकने के बाद किया गया आराम हराम नही है।

आधुनिक कविता में भक्तिकाल

कुछ आलोचको की शिकायत है कि आज मे कवि केवल अपने कवि-मित्रों के लिए ही कविताए लिखते हैं और उनकी कविता का जन-साधारण मे प्रसार नही हो पाया है। मैं आधुनिक हिंदी-काव्य के बारे में इस प्रकार की निराशाजनक बातो को सुनने के लिए कतई तैयार नही हू। मेरा मत है कि वतमान हिंदी कविता एक अधिक व्यापक रूप मे पुराने भक्ति-काल की प्रवृत्तियो का प्रतिनिधित्व करती है।

वतमान कविता मे भक्ति ज्ञान, वैराग्य का अपूव सामजस्य है। छायावाद तथा रहस्यवाद के आगमन के ― तो प्रियप्रवास, पचवटी जयद्रथ-वध आदि का बोलबाला था ही, जिनमे या तो 'राधिका कान्हाई सुमिरन को बहानो है' वाली बात पाई जाती है या पुराणो के आख्यान और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के चरित्र चित्रण मिलते हैं। मैथिली-शरणजी ने यदि साकेत में राम को इष्ट माना है तो द्वापर मे कृष्ण को, राम श्याम का ऐसा सयुक्त आराधन किसी मध्यकालीन कवि म नहीं मिलेगा। वस्तुत द्विवेदी युग के सभी कवि भक्ति-पक्ष की कविताए लिखते हैं, और नहीं तो, नीति के वचन कहते हैं, 'नर हो न निराश करो मन को।'

छायावादकालीन कवियों मे प्रसाद की धमप्रवण प्रतिमा ने

कामायनी का सृजन किया जिसमें श्रद्धा की महिमा का वेदसम्मत वर्णन करके 'श्रद्धावांल्लभते लाभ' की पुष्टि की है। उनकी कुछ भक्ति विभोर प्रार्थनाएं तो बहुत ही प्रसिद्ध हैं 'पालना बनें प्रलय की लहरें', 'करुणा-कादम्बिनि बरसे' आदि। 'अब भी चेत ले तू नीच' जैसे गीतों मे उन्होंने मायालिप्त मन को वैराग्य का सदेश दिया है। 'चढ़कर मेरे जीवन रथ पर, प्रलय चल रहा अपने पथ पर' जैसी पंक्तियों मे उन्होंने जीवन की क्षणभंगुरता का निर्देश किया है। प्रसाद जी की सर्वाधिक भक्ति-पूर्ण रचना है 'आंसू'। इसमे भू-लोक, नक्षत्र-लोक एव रहस्य-लोक की भावा-विष्ट सृष्टि करके कवि ने आसू को प्रभु की असीम करुणा का उप-लक्षण माना है और उससे प्रार्थना की है कि वह विश्व सदन मे चमके। निराला ने तो तुलसीदास पर एक काव्य ग्रथ लिखकर सिद्ध ही कर दिया कि राम ते अधिक राम कर दासा। फिर भी 'राम की शक्ति पूजा' मे उन्होंने अपने शाक्त रूप का भी प्रचुर परिचय दिया है। वैसे मानना होगा कि निराला स्मार्त वैष्णव हैं। 'डोलती नाव अगम है धार, सभालो जीवन खेवनहार' अथवा 'भर देते हो' जैसी रचनाएं एक वैष्णव ही लिख सकता है। उन्होंने 'पचवटी प्रसग' नामक एक लघुपुराण भी लिखा है। उनके कुछ गीतों से, यथा, 'हमे जाना है जग के पार' से 'चल चकई वा देश मे' वाला भाव स्पष्ट होता है। जिस प्रकार कबीर ने 'माया महाठगिन मैं जानी' मे माया की निंदा की है वैसे ही निराला ने भी 'तू किसी के चित्त की है कालिमा' कहकर उसे तिरस्कृत किया है।

सुमित्रानदन पत तो अरविंद के प्रभाव मे खुलेआम भक्तिवादी हो गए हैं और ससार को भक्तिप्रवण होने का सदेश दे रहे हैं। 'आओ प्रभु के द्वार' मे उन्होंने एक व्यग्र पुजारी की भावनाओ का चित्रण किया है। कवियत्रियो मे महादेवी वर्मा जी द्वारा अज्ञात अव्यक्त परमात्म-तत्त्व की आराधना तो जगद्विख्यात है ही, 'पथ होने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला' मे 'एक एव चरेत्' वाले भाव की पुन पुष्टि की गई है। कोकिल जी के पदों में मीरा की सी ... और भक्ति भावुकता है। 'सखि अब रस बरसे मैं भीजू 'मा,

सुहाग भरी' आदि पदों को सुनते ही मन का सारा कलुष धुल जाता है। नरेन्द्र शर्मा ने युवावस्था में प्रमाद में प्रवासी के गीत लिखे थे, परन्तु प्रवासी शब्द से ही परमात्मा से बिछुड़ी हुई आत्मा का बोध होता है और अनजाने ही जिस दर्शन-तत्त्व ने उनकी लेखनी को तब परिप्लुत किया था वही उनकी अर्वाचीन कविताओं में निर्द्वन्द्व भाव से फैल रहा है

शत गज-बल संयुत यत्र शिल्प तव विश्वकर्म।
शतरूपा सृष्टि शिवालय समुदाय विश्वधर्म॥
× × ×
हो रही चतुर्दिक चिदाकाश से सूक्ष्म वृष्टि।
चिन्मय रस की सब ओर रास, जग वृंदावन॥

जब मैंने अज्ञेय का नाम सुना था तभी 'ऋते ज्ञानान्न मुक्ति' के आधार पर मान लिया था कि मुक्ति को पाने के लिए उनके काव्य का ज्ञान होना आवश्यक है। प्रपंच की धार में मग्न, किंतु अपने आप में स्वतंत्र आत्मा के लिए 'हम नदी के द्वीप हैं' वाली कविता चिरकाल तक वेदांतियों का ज्ञानवर्द्धन करेगी। जिसे कबीर ने 'जल का कुंभ' कहकर छोड़ा था उसने आज द्वीप का-सा वृहदाकार ग्रहण कर लिया है। 'अरे यायावर, रहेगा याद' कहकर चौरासी कोटि योनियों में भ्रमने वाले जीव को उसके वास्तविक रूप का बोध कराया गया है। अज्ञेय की कविताएं ज्ञानमूलक हैं किंतु उनका मूलाधार आस्था है। जिससे भक्ति की सृष्टि होती है। उसी प्रकार धर्मवीर भारती के अंधा-युग में 'यह जग अंधा मैं केहि समझावो' की भावना के साथ ज्ञान भक्ति का अद्भुत समन्वय करके श्रीकृष्ण लीला का संवरण किया है। श्रीकृष्ण-चरित्र पर लिखित यह एक पवित्र ग्रंथ है।

यहां मुझे एक दूसरे संत कवि बच्चन की याद आती है जो कहते हैं

जय हो, हे संसार तुम्हारी।
तुम जीते उस ठौर जहां पर
हमने बाजी हारी।

इस भजन में एक अकेले व्यक्ति की तुलना मे ससार की महत्ता का बखान हुआ है। ससार क्या है ? इसके उत्तर म गीता मे अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा है

प्रसीद देवेश जगन्निवास
त्वमक्षर सदसत्तत्पर यत

(गीता ११/३७)

अर्थात् हे भगवन, यह जगत् ही तुम्हारा निवास है। ससार प्रभु का लीलामय निवास है, इसलिए बच्चन महाराज ने इस ससार के सामने अपनी हीनता स्वीकार की है। भक्ति सूत्रो मे ऐसे प्रणति कहा गया है। यही नही, ससार तो स्वय भगवान का रूप है। भागवत मे कहा है

यस्मिन्निद यतश्चैद येनेद य इद स्वयम।
योऽस्मात् परस्माच्च पर न प्रपदये स्वयम्भुवम्

(भागवत ८/३/३)

ध्यान दीजिए य इद स्वयम्।

उनका दूसरा भजन है

अकेलेपन का बल पहचान।

और इस प्रकरण मे दत्तात्रेय का यह उपदेश सुनने लायक है

"वासे बहूना कलहो भवेत् वार्ता द्वयोरपि।
एक एव चरेत तस्मात कुमार्या इव ककण ॥

(भागवत ११/९/१०)

सासारिक प्रपच मे लिप्त प्राणियों को इस तिरस्कारपूर्ण भजन से सचेत करने की चेष्टा की गई है तूने अर्म नही दुख पाये।

नए कवि की आस्था वस्तुत विश्वास का ही नया नाम है जो फलदायक होकर रसानुभूति कराती है। और रस क्या है ? रसो वै स। कवि की बहु-वर्णित अनुभूति भी गूगे का गुड है जिसका रस वह अपने आप ही पाता है और वृथा दूसरो पर प्रकट करने की चेष्टा करता है। अनुभूति का उत्तर अनुभूति ही दे सकती है, शब्द नहीं।

ये तो दर्शन निरूपण की कुछ मौलिक बातें हैं जिनका यही तात्पर्य है कि नवीन कवि भी परम भागवत एवं धर्मतत्पर हैं और उनकी भाषा भी पुराने संत कवियों की सधुक्कड़ी भाषा जैसी अटपट और जटिल है।

श्री सुरेन्द्र एवं राम बहादुर 'मुक्त' द्वारा संपादित कविताएं १६५७ नामक ग्रंथ की पहली कविता यों है

तृप्ति की मधु मोहिनी का एक कण दे दो न मुझ को।
× × ×
छाह की ममता भरी श्य मल शरण दे दो मुझ को।
(अचल)

इस स्तोत्र मे 'रसो वै स' की मधुर कल्पनाएं विवृत्त करके प्रभु का भाव-कण पाने की याचना की गई है।

दूसरी कविता यों है
ये जो चेहरे पर खिंची लकीरें हैं
× × ×
जो माथे पर टेढ़े-मेढ़े आड़े तिरछे बल हैं।
× × ×
सब कुछ तो बदल गया
पर मुख का भाव
(अजित कुमार)

इसमे माथे की लकीरों, अर्थात् प्रारब्ध के अमिट होने की बात कही गई है और उससे बचने के लिए प्रभु का आश्रय लिया जाए, इसका प्रच्छन्न इंगित किया गया है।

तीसरी कविता यों है
हरे भरे हैं खेत
मगर खलिहान नही

इस प्रकार जीवन के बाह्य वैभव की वास्तविक निस्सारता को बताकर कहा गया है

पकेगा फल चखना होगा
उन्हीं को जो जीते हैं आज
जिन्हें है बहुत शील का ज्ञान
(अज्ञेय)

इसमे पुन कर्मफल की अनिवार्यता सिद्ध करके नीति-वाक्य द्वारा शील की गरिमा की स्थापना की गई है।

चौथी कविता है निमिया की छाह तले। कवि हैं अधीर, बी० ए०। इसके शीर्षक से ही विश्वताप से दग्ध जीव को प्रभु की करुण छाया के प्रति प्रेरित किया गया है। पांचवीं कविता में अनत कुमार 'पाषाण' ने शीर्षक दिया है 'फौरन् द्वार खोलो'। इससे भक्त की व्यग्रता और भाव की उत्कटता प्रकट होती है। इसकी अतिम पक्तिया हैं

हे प्रभु, सब यह प्रपच का
तृष्णा के नयनों से
घूर रहा है अब भी
खोलो द्वार, खोलो द्वार
फौरन् द्वार खोलो।

इस विह्वलता के आधार पर पाषाण जी को घनानद और रसखान की कोटि मे रखा जा सकता है।

इसके बाद 'भोर' नामक कविता मे अभय वर्मा गगा-स्नान और राम-नाम आदि का महत्त्व गाते हैं

प्रसन्न हुई हवा नहाकर गगा
पडोस मे राम का नाम जागा।

इस सग्रह मे कहीं गगाप्रसाद पाडेय मुक्ति की अकथ कथा कहते हैं

यह वही क्षण
मुदि॰ मधुकण
सामने सागर निकट है
जो कगारों से कभी मिलता नहीं।
(मुक्ति)

ये तो दशन निरूपण की कुछ मौलिक बातें हैं जिनका यही तात्पय है कि नवीन कवि भी परम भागवत एव धर्मतत्पर हैं, और उनकी भाषा भी पुराने सत कवियों की सधुक्कडी भाषा जैसी अटपट और जटिल है।

श्री सुरेन्द्र एव राम बहादुर 'मुक्त द्वारा सपादित कविताए १६५७ नामक ग्रथ की पहली कविता यों है

तृप्ति की मधु मोहिनी का एक कण दे दो न मुझ को।
× × ×
छाह की ममता भरी श्य मल शरण दे दो मुझ को।
(अचल)

इस स्तोत्र मे 'रसो वै स' की मधुर कल्पनाए विवृत्त करके प्रभु का भाव-कण पाने की याचना की गई है।

दूसरी कविता यो है

ये जो चेहरे पर खिची लकीरें हैं
× × ×
जो माथे पर टेढे-मेढे आडे तिरछे बल हैं।
× × ×
सब कुछ तो बदल गया
पर मुख का भाव
(अजित कुमार)

इसमे माथे की लकीरो, अर्थात् प्रारब्ध के अमिट होने की बात कही गई है और उससे बचने के लिए प्रभु का आश्रय लिया जाए, इसका प्रच्छन्न इगित किया गया है।

तीसरी कविता यो है

हरे भरे हैं खेत
मगर खलिहान नही

इस प्रकार जीवन के बाह्य वैभव की वास्तविक निस्सारता को बताकर कहा गया है

पकेगा फल चखना होगा
उन्हीं को जो जीते हैं आज
जिन्हें है बहुत शील का भान
(अज्ञेय)

इसमे पुन कर्मफल की अनिवार्यता सिद्ध करके नीति-काव्य द्वारा शील की गरिमा की स्थापना की गई है।

चौथी कविता है निमिया की छाह तले। कवि हैं अधीर, बी० ए०। इसके शीर्षक से ही विश्वताप से दग्ध जीव को प्रभु की करुण छाया मे प्रति प्रेरित किया गया है। पाचवीं कविता में अनत कुमार 'पाषाण' ने शीर्षक दिया है 'फौरन् द्वार खोलो'। इससे भक्त की व्यग्रता और भाव की उत्कटता प्रकट होती है। इसकी अतिम पंक्तियां हैं

हे प्रभु, अब यह प्रपच का
तृष्णा के नयनो से
घूर रहा है अब भी
खोलो द्वार, खोलो द्वार
फौरन् द्वार खोलो।

इस विह्वलता के आधार पर पाषाण जी को घनानद और रसखान को कोटि मे रखा जा सकता है।

इसके बाद 'भोर' नामक कविता में अभय यमा गगा-स्नान और राम-नाम आदि का महत्त्व गाते हैं

प्रसन्न हुई हवा नहाकर गगा
पड़ोस में राम का नाम जागा।

इस सग्रह में कहीं गगाप्रसाद पांडेय मुक्ति की अकथ कथा कहते हैं

यह वही क्षण
मुक्ति मधुकण
सामने सागर निकट है
जो बगारों से कभी मिलता नहीं।
(मुक्ति)

कहीं गजानन माधव 'मुक्तिबोध' ब्रह्म का निरूपण करते हैं

निराकार सूने का घेरा किंतु अखड स्थिर रहा,
वह मेरा श्याम शून्य
अनिमेष निहारता खड़ा रहा सत्यो को एकटक

(कई बार)

गिरिजाकुमार माथुर अपनी प्रार्थना मे विराट रूप का ध्यान करते हैं

जीवन को फिर विराट् गीत का आलाप दो
अग्नि दो, तपन दो, नया ताप दो।

(नयी आग की खोज)

जगदीश गुप्त सासारिक व्यवहार की निस्सारता प्रकट करते हैं

हसी यह
खोखली है झूठ है, दिखावटी है

(हसी के पाश)

हरिनारायण व्यास शब्द ब्रह्म का माहात्म्य वर्णित करते हैं

चैतन्य शिव आनद का उपभोग केवल शब्द मे
सोया हुआ है।

(आज यह दुनिया)

धर्मवीर भारती जीवन-यात्रा मे तृष्णा की निस्सीमता पर कहते हैं

यह सफर की प्यास, अबुझ, अथाह।

(अतहीन यात्रा)

विष्णुचद्र शर्मा जीव के देह धारण करने की कुरसा पर क्षोभ प्रकट करते हैं

क्यो जन्मा मैं,
क्यो मेरे मन मे जीवन की गाठें खोली ?

(वर्षगांठ के दिन)

ये समस्त सत कवि साधुवाद, स्नेह और दया के पात्र हैं जो आज के नास्तिक-युग मे अपनी आस्थापूर्ण भक्तियुक्त वाणी से लोक के कलुष को विशीर्ण कर रहे हैं। आजकल मानव जाति अणुबम एव उदजन-अस्त्रो के प्रबल आतक मे डूब उतरा रही है, क्षुधा-तृषा की तुच्छ समस्याओं मे ग्रस्त है, अनेक आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक सघर्षों मे अपने आप को भूली हुई है। ऐसी दशा मे हमारे सत कवि अपने स्वरो द्वारा हमें तात्कालिक यथार्थ से खीचकर दूर ले जाने की पवित्र चेष्टा कर रहे हैं और हमे उस चिरतन सत्य का दर्शन करा रहे हैं जिसे हम मूढतावश अपने लिए अनावश्यक समझते हैं। यह दृष्टि दोष है। यही माया है। किसी कवि ने कितनी सच्ची बात कही है

एक ऊर्णनाभ
मेरी आखो पर
जाला बुनता है
(धूप्र, देवकुमार)

छात्रों में अनुशासनहीनता कैसे रोकी जाए ?

छोटी कक्षाओं में मुझे सिखाया गया था कि प्रत्येक निबंध की शुरुआत परिभाषा से करनी चाहिए, जैसे गाय पर निबंध लिखना हो तो शुरू इस सवाल से करना चाहिए कि गाय किस चिड़िया का नाम है ? उसी तरह इस छोटे से निबंध की शुरुआत इस सवाल से हो सकती है कि छात्रों की अनुशासनहीनता है क्या चीज ?

इतना तय है कि क्लास में न आना, फीस न देना, अध्यापकों से अबे-तबे करना, किताबों को कभी न देखना, सहपाठिनी छात्राओं को लगातार देखते रहना, ऊलजलूल कपड़े पहनना, उससे भी ज्यादा ऊलजलूल बोली बोलना—यह सब अनुशासनहीनता नहीं है, कम-से-कम इन्हें लेकर छात्रों को अनुशासनहीन नहीं कहा जाता। वैसे ही, सिनेमा में झगड़ा करना, रेल में बिना टिकट चलना, दुकानदारों से चौथ या जजिया वसूलना, किसी भी रेस्त्रां में पहुंचकर अपनी शहंशाही का खुत्बा पढ़ते हुए फोकट में खाना और फोकट में खिलाना—यह सब भी अनुशासनहीनता में नहीं आता। दरअसल, अगर कल के गुजरात और आज के बिहार की हालत पर गौर करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि छात्रों की अनुशासनहीनता सिर्फ सड़क पर जुलूस निकालने, हड़ताल करने,

बसें जलाने, गोली खाने, जेल जाने, यानी सौ बात की एक बात—पालिटिक्स भिड़ाने में है।

सवाल यह है इस समय यानी जब जयप्रकाशनारायण जी सभी का सर्वोदय कर रहे हैं, छात्रों की इस अनुशासनहीनता को रोका कैसे जाए ?

अनुशासनहीनता का उपर्युक्त अर्थ जान लेने के बाद उसका हल आसानी से निकाला जा सकता है। सबसे सीधा रास्ता तो यह है कि पालिटिक्स ही खत्म कर दी जाए—न रहे बांस न बजे इहा। पर पालिटिक्स खत्म हो जाने से ग्राम स्तर से अखिल भारतीय स्तर तक के लाखों राजनीतिक नेता बेकार हो जाएंगे और इतना बड़ा 'ले-आफ' होने से बेरोजगारी की समस्या और भी विकराल हो जाएगी। इसलिए, पालिटिक्स अच्छी हो या बुरी, बेरोजगारी को दूर रखने के लिए पालिटिक्स को कायम रखना ही पड़ेगा।

दूसरा उपाय यह है कि स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों को खत्म कर दिया जाए। न रहें छात्र और न रहे उनकी अनुशासनहीनता। पर इससे भी यह नुकसान होगा कि लाखों अध्यापक बेरोजगार हो जाएंगे। और सभी मानते हैं आज की शिक्षा-संस्थाएं छात्रों के लिए भले ही बेकार हों, अध्यापकों की रोजी के लिए उनका कायम रहना लाजमी है। वैसे भी, यदि शिक्षा-संस्थाएं खत्म हुईं तो उसी अनुपात से शराबखानों, पागलखानों और जेलों की संख्या बढ़ानी होगी जो कि नैतिक दृष्टि से अनिष्टकर है। अतः फिलहाल शिक्षा-संस्थाओं को अवध्य मानकर अछूता छोड़ दिया जाए।

तीसरा उपाय यह है कि कॉलेज खत्म न हो सकें तो छात्रों की परीक्षाएं खत्म कर दी जाएं, क्योंकि 'इंकलाब जिंदाबाद' के नारों की शुरुआत अब प्रायः परीक्षा-कक्ष से ही होती है। पर पर्चा बनाने वालों, परीक्षा के निरीक्षकों, अधीक्षकों, पर्यवेक्षकों और कापी जांचने वालों, नंबर जोड़ने वालों, जोड़ की चेकिंग करने वालों, यानी परीक्षा से पैसा पैदा करने वालों की संख्या भी लाखों में है और अगर परीक्षाएं खत्म हो गईं तो उनकी जीविका का एक साधन भी खत्म हो जाएगा, यानी

आज की परीक्षाएं छात्रों के लिए भले ही बेकार हों, मास्टरों के लिए बड़े काम की हैं और सारी-की सारी शिक्षा भले ही खत्म हो जाए, परीक्षाएं नही खत्म की जा सकती।

तब सवाल उठता है कि पालिटिक्स को मिटाए बिना, शिक्षा-संस्थाओं को मिटाए बिना, परीक्षाओं को मिटाए बिना छात्रों की अनुशासनहीनता कैसे मिटाई जा सकती है ? इस प्रसंग मे, सूत्र रूप में, निम्नलिखित नुस्खो की आजमाइश की जानी चाहिए

(१) राजनीति के दलदल मे वह खुद भले ही लोट रहा हो, पर प्रत्येक राजनीतिक नेता बार-बार यही चीखता रहे कि विद्यार्थियों को राजनीति से दूर रहना चाहिए।

(२) सामाजिक जीवन की गुत्थियो और देश की समकालीन समस्याओ के साहित्य पर रोक लगा दी जानी चाहिए। उसकी जगह 'यूथ टाइम्स', 'माधुरी', 'फेमिना' 'फिल्मफेयर', 'दीवाना' 'कान्फिडेंशल एडवाइजर' जैसी पत्र-पत्रिकाओं को रियायती दरों पर छात्रो मे बेचा जाए और स्कूलो मे मुफ्त बटवाया जाए।

(३) *'गर्म हवा'* जैसी गर्म फिल्मो को रोककर 'मनोरंजन', 'दोराहा', 'चेतना', 'जरूरत' जैसी फिल्मो को कलात्मक घोषित किया जाए, उन्हें मनोरंजन कर से मुक्त किया जाए और प्रोड्यूसरों तथा डायरेक्टरों मे गंदी फिल्में बनाने की वार्षिक प्रतियोगिता चलाई जाए।

(४) किताबें बहुत महगी हो और शराब बहुत सस्ती हो। नशीली दवाओ का खुलेआम गुप्त प्रचार किया जाए।

(५) गांधी की ब्रह्मचर्य साधना को लंगोटीवादी राजनीति बताकर सेक्स संबंधी स्वच्छंदता को राष्ट्रीय मान्यता दी जाए।

(६) विश्वविद्यालय मे प्रजातंत्र के सिद्धांत, घाटे की अर्थव्यवस्था, मुद्रास्फीति आदि विषयों को छोड़कर बराबर ऐसे सेमिनार होते रहें जिनका विषय हो *'सिनेमा में चुंबन दिखाया जाए या नहीं'* अथवा पत्नी के साथ एक प्रेयसी रखना तंदुरुस्ती के लिए हानिकारक है या लाभकर।'

(७) फिल्मो और विज्ञापनों की मार्फत बड़े-बड़े बालों, उल्टे-सीधे

फैशनो, बेहूदा तौर-तरीका को प्रोत्साहित किया जाए।

(८) होटलो, मिठाई की दुकानो, कहवाघरो और शराबखानो पर उन्हें निरतर उधार लेने की चिरतन सुविधा दी जाती रहे।

(९) फौजी अफसरो प्रशासको, राजनीतिक नेताओ और असफल अध्यापको के अलावा सक्स-बम रेखा और मोगिता बाली या राजेश खन्ना और शत्रुघ्न सिन्हा जैसे अभिनेताओ को विश्वविद्यालयो का वाइस चासलर बनाने का मौका दिया जाए।

(१०) विश्वविद्यालयो का पाठ्यक्रम पच्चीस साल में पूरा हो ताकि छात्र विश्वविद्यालय से बाहर आते आते बूढे हो जाए।

(११) यह हालत तो सामान्य तौर पर रहे पर बडे उद्योग पतियो, अफसरो और नेताओ के लडको के लिए खुफिया तौर पर छोटे छोटे शिक्षा सस्थान चलाए जाए, जहा से वे भविष्य के उद्योगपतियो अफसरो और नेताओ की शक्ल में निकलकर अपने बाप का उत्तरा धिकार सुरक्षित रखें।

(१२) सक्षेप मे, कुछ ऐसा माहौल हो कि छात्रो का पूरा समाज 'गुलिवर्स ट्रैवेल्स' के याहू नामक जन्तुओं का समुदाय बन जाए वे अपनी आधी से ज्यादा उम्र सिर्फ उल जलूल ढग से बाल बढाने उल-जलूल फिल्में देखने, बेहूदा पत्रिकाए पढने, एक-दूसरे पर खीझने चीखने-चिल्लाने, गुर्राने, सस्ता नशा करने, होटलो मे पौकेट का खाना खाने, हर तीसरे रोज बदलने वाले फैशन से हर रोज अपने को बहलाने-बरगलाने और हर जगह से अपने को बरबाद करने मे बिताते रहे।

और, उसी प्रसग मे, देश मे जो जहा जिस गद्दी पर जिस तरह बैठा है, वह वहा उस गद्दी पर उसी तरह बैठा रहे।

अब आप यह देखिए कि ये सुझाव तो मैं आज दे रहा हू पर अपने देश मे ऐसी सूझ-बूझ वाले लोग हैं कि इनमे से अपने आप कई सुझावो पर बहुत पहले से अमल होने लगा है।

दो सस्मरण

(१)

मेरे व्यग्य लेखन का एक ऐतिहासिक क्षण

१९४५ की बात है। तब तक विश्वविद्यालयों मे विद्यार्थी को देखते ही लफगा मानने का चलन नही हुआ था। ऐसे प्रोफेसर काफी सख्या में थे जो लडको को 'जेंटिलमेन' कहकर सबोधित करते थे, यही नही, उन्हें ऐसा समझते भी थे।

मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में था। वातावरण सब प्रकार से विद्यार्थी को जेंटिलमैन बना डालने वाला था। हमारे छात्रावासों के मीटिंग हाल में *योग्य और विशिष्टता पाने वाले विद्यार्थियो की वार्षिक सूचिया* टगी हुई थी। ये० आई० सी० एस० में, पी० सी० एस० मे इसमें, उसमें—किसी भी बुक की सरकारी नौकरी की परीक्षा में सफल होने वालो की सूचियां थी। हम किसी-न किसी दिन इन्हीं सूचियो में टगने की उम्मीद बाघे चुपचाप किताबें पढते रहते, उससे भी ज्यादा चुप होकर खेलते और छात्रावास के पुरातनकालीन शौचालयों, गद्य भरे, लगभग गदे भोजनालयो और बिना पानी के गुसलखानों में आते-जाते हुए अपने को जेंटिलमैन बनाए रखने की कला सीखते।

मेस और—रेलवे बोर्ड की भाषा मे—सहास तो जैसे-तैसे चल जाते क्योंकि वे जैसे-तैसे अपने उद्देश्य की पूर्ति कर देते थे, पर बिना पानी का गुसलखाना कहा तक सहा जाता ? शायद पानी का दबाव कम था। जो भी हो, नल से बूद-बूद पानी टपकता था। बूद-बूद से घटे भर मे बाल्टी भरती थी और चौथाई मिनट मे रीती हो जाती थी। गुसलखाने के आगे 'क्यू' लगता था, पर 'क्यू' का कोई नियम मानना जरूरी न था। नहाने वालो की भीड मे दगे की स्थिति पैदा हो जाती थी। इस स्थिति ने कुछ नेता पदा किए। नेताओ ने नहाने की व्यवस्था मे सुधार करना चाहा। तब तक हम सीख गए थे कि किसी भी सुधार के लिए धुआधार आदोलन करना ही एकमात्र तरीका है। हम आदोलन पर उतर आए।

सिर्फ बाथरूमी चप्पल और पैजामे पहने हुए, हाथ मे तौलिया और साबुन लिए नगे बदन जवामर्दों का एक जत्था हमारे छात्रावास से बाहर निकला। जुलूस की शक्ल मे हम वाइसचासलर डॉ० अमरनाथ झा के बगले की ओर बढे। आसपास के छात्रावासो के लडके भी हमारे दुख से दुखित होकर जिस्म से कपडे उतार-उतारकर, तौलिया झटकारते हुए, जुलूस मे शामिल हो गए। 'इकलाब जिंदाबाद' का वातावरण बन गया। लोटे-लोटे की झनकार, सारे बाथरूम बेकार के नारों से खुद हमारे ही दिमाग गूज उठे।

ऐसे मौके पर प्रयाण गीत के लिए मैंने एक कविता लिखी थी जिसे यहा दोहराना ही इस टिप्पणी का असली उद्देश्य है।

यह कविता उस जमाने के प्रसिद्ध प्रयाण गीत

> खिदमते हिंद म जो कि मर जाएगे,
> नाम दुनिया मे अपना भी कर जाएगे।

की तर्ज पर लिखी गई थी और इस प्रकार थी

> "हम बिना बाथरूमो के मर जाएगे।
> नाम दुनिया म अपना भी कर जाएगे।

यह न पूछो कि मरकर किधर जाएगे,
होगा पानी जिधर, बस उधर जाएगे।
जून में हम नहाकर थे घर से चले,
अब नहाएगे फिर जब कि घर जाएगे।
यह हमारा वतन भी अरब हो गया,
आज हम भी खलीफा के घर जाएगे।"

—आदि-आदि

यह मेरी पहली व्यग्य रचना थी। पता नही, उस 'करुण-करुण मसृण-मसृण' वाले जमाने मे—जब कि ज्यादातर मैं खुद उसी वृत्ति का शिकार था—मैं यह प्रयाण-गीत कैसे लिख ले गया। जो भी हो इसका यह नतीजा जरूर निकला कि लगभग दस साल बाद मैंने जब व्यग्य लिखना शुरू किया तो मुझमे यह आत्मविश्वास था कि मैं दस साल की सीनियारिटी का व्यग्य-लेखक हू और दूसरो की तरह किसी भी पोच बात को सीनियारिटी के सहारे चला सकता हू।

खैर, अपने व्यग्य-लेखन के बारे मे इतना तो मैंने लगे हाथ—यू ही—बता दिया। जहा तक बाथरूमो की बात है, खलीफा—डॉ० झा ने हमारे आदोलन को सफल बनाने में बडी मदद दी। आज की तरह विद्यार्थियो के जुलूस को देखते ही उन्होंने पुलिस नही बुलाई, गोली नही चलवाई, प्रेस के लिए तकरीर नहीं दी, इसे अपनी इज्जत का सवाल नहीं बनाया। सिर्फ दो एक छोटे छोटे वाक्यों में जुलूस के सनकीपन का हवाला देते हुए उन्होंने आश्वासन दिया कि ठीक ढग के नए बाथरूमों की व्यवस्था हो जाएगी। यही नहीं—आज आपको ऐसी बात सुनकर अचम्भा भले ही हो—उन्होंने जल्दी ही अपना आश्वासन पूरा भी कर दिया।

(२)
भूतनाथ की चोरी

मेरे पास बैठे हुए मेरे सहपाठी के गदे बस्ते में एक गदी जिल्द वाली किताब रखी हुई थी। पिछले पाच दिन से मेरा मन इसी किताब

मे लटका हुआ था। उसे हाथ से छूने के लिए, आखो से खा जाने के लिए मैं उतावला हो रहा था। इस गदी जिल्द मे भूतनाथ के पाचवे से आठवें भाग तक बधे हुए थे। पहले के चार भाग मैं पढ चुका था। आगे के लिए मुझे इसी जिल्द का सहारा था। पर मेरे सहपाठी ने मुझे किताब देने से इकार कर दिया था।

मेरे सहपाठी के बडे भाई का नाम भूतनाथ ही पड गया था। असली बात जानने के लिए बडा शोध करना पडेगा, भूतनाथ की-सी ऐयारी करनी पडेगी। वह पहले कलकत्ते मे कुछ करता था। उत्तर प्रदेश के इन इलाको से लोग कलकत्ते जाते है वहा 'कुछ' करते है और पैसा कमाते हैं। शायद उसका 'कुछ' बहुत कुछ असफल रहा। इसीलिए कुछ दिन बाद वह घर लौट आया, साथ मे चद्रकाता, चद्रकाता सतति और भूतनाथ का पूरा सेट ले आया। कुछ दिनो तक गाव मे तिलिस्म और ऐयारी का बोलबाला रहा। लोगो की बातचीत के ढग और नाम तक बदलने लगे। उसी हल्ले मे मेरे सहपाठी के भाई को लोग भूतनाथ कहने लगे। मेरे सहपाठी का महत्त्व बढ गया। वह अचानक भूतनाथ का छोटा भाई हो गया। तब मैं मिडिल स्कूल की छठी कक्षा में पढता था। उससे मागकर मैंने भूतनाथ के चार भाग पढे। आगे के भागो के न मिलने पर, उसका पुराना एहसान भूलकर, शुद्ध भारतीय परपरा के अनुसार मैं उसका दुश्मन बन बैठा।

खरीदने या मागने से भूतनाथ के अगले भाग पाना सभव न था। शराफत का मेरे लिए यही रास्ता बचा था कि मैं इस जिल्द को चुरा लू। यह उन दिनो की बात है जब इस तरह की चोरी करने से कोई बाल अपराध के रूप मे एक सामाजिक समस्या बनने का अधिकारी नही होता था। पकडे जाने पर दो चार लप्पड लगा दिए जाते और किताब छीन ली जाती, बस, बात यहा तक रह जाती। इसलिए किताब चुराने का पूरा प्रश्न मेरे आगे इसी रूप मे आया कि किस तरह बिना पकड मे आए किताब टाप दी जाए।

जो भी हो, मैंने किताब टाप दी। वास्तव मे यह बहुत आसान बात थी और मेरे लिए बिलकुल नई भी न थी। भूगोल के घटे मे मास्टर

साहब का हम लोगों पर बड़ा द्रावक प्रभाव पड़ता था। सभी लड़के बार-बार पानी पीने या पानी निकालने के लिए बाहर जाते थे। मेरा सहपाठी भी कुछ देर के लिए बाहर गया और मैंने होशियारी के साथ किताब टाप दी।

मैं जानता था कि कुछ देर बाद वह किताब की चोरी का तमाशा खड़ा करेगा। अत मैं पहले ही किताब छुपाकर पानी पीने के लिए बाहर चला आया। कुए के पास गदा पानी जम गया था, बड़ी बड़ी घास उगी थी और केले का एक झुरमुट था। वहा मैंने भूतनाथ (भाग ५-८) को बिना किसी रस्म के दफन कर दिया। शाम को निकालने का इरादा करके चुपचाप अपने निष्कलंक चेहरे के साथ दर्जे म आकर अपनी जगह बैठ गया।

एक घटे बाद क्लास मे छानबीन शुरू हुई। मेरे सहपाठी ने घोषणा की कि किसी ने उसकी किताब भूतनाथ (भाग ५-८) चुरा ली है। इस पर मास्टर साहब ने उसके दो चार झापड़ लगाकर प्रारंभिक वक्तव्य दिया कि सिर्फ उम्र जैसे लफगे ही ऐसी किताब पढ सकते हैं। जिल्द को देखते हुए किताब का यह वर्णन अक्षरश सत्य था। अब मास्टर साहब ने दूसरा वक्तव्य दिया, 'सब लड़के अपनी-अपनी जगह खड़े हो जाए। सबके बस्तो की तलाशी ली जाएगी।'

यह राज का कारोबार था और हम सब इसके अभ्यस्त थ। हम खड़े हो गए। दर्जे के मानीटर ने सब के बस्तों की तलाशी लेनी शुरू की, मैं दार्शनिकों की तरह चुपचाप खड़ा रहा। आदमी को पकड़ मे आने का डर न हो तो दार्शनिक जैसा दिखने मे लगता ही क्या है?

अचानक एक लड़के के बस्ते म किताब दिख गई। दर्जे म शोर मचने लगा। मैं अचभे म आकर इस चमत्कार को देखता ही रह गया। मास्टर साहब ने पहले तो लड़के पर चार पाच बेंत बिना कुछ कहे ही फटकार दिए फिर गालियां देते हुए पूछा बदमाश, अब क्या कहेगा क्या?

रात रोने लड़के का खतरा फूट गया। किसी तरह से उसने कहा, मैंने नहीं चुराया नहीं है। यह किताब कल के पड़ के पास पड़ी थी।

मैंने यू ही उठा लिया था।"

मास्टर साहब ने उसे दो बेंत और रसीद किए और कहा, "झूठे की औलाद! चोट्टे! सच सच बता, किताब क्यों चुराई?"

अब मेरे लिए आगे बरदाश्त करना मुश्किल था। मेरे ही कारण मेरा साथी मार खा रहा था। मुझसे बोले बिना नहीं रहा गया। आगे क्या होगा, इसकी चिंता किए बिना ही मैं अपनी जगह से चिल्लाकर बोला, "मुंशी जी, यह ठीक कह रहा है। पता नहीं कौन बदमाश इस केले के पास फेंक आया था। मैं जब पानी पीने गया था तब मैंने खुद देखा, यह किताब केले के पास ही पड़ी थी।"

फिर तो क्लास के एक और मशहूर लड़के ने मेरी बात का समर्थन किया। अंत में इन गवाहियों पर अपराधी को रिहा कर दिया गया। भूतनाथ फिर मेरे पड़ोसी के बस्ते में रख लिए गए। कुछ देर इस बात पर बहस चलती रही कि किताब केले के पास कैसे पहुंची। फिर बात खत्म हो गई।

अपने साथी पर मार पड़ते देखकर भी मैंने सच बात नहीं बताई, इसलिए आप मेरी कायरता की निंदा कर सकते हैं। वैसे, करने को आप सब कुछ कर सकते हैं, पर मेरे इस व्यवहार का एक कारण था। कारण यह था (और है) कि मैं हीरो नहीं हूं। यह मेरी बड़ी प्रारंभिक कमजोरी है। काश, मैं उस मौके पर चिल्ला सकता, "मुंशी जी, उसे छोड़ दीजिए असली अपराधी मैं हूं।" तो सचमुच ही इस घटना से मेरे चरित्र में दुर्लभ मानवीय गुणों का परिचय मिल सकता था। पर इसका नतीजा आगे चलकर कुछ और ही होता। तब मुझे खुद नाज अपने हाथ से यह संस्मरण न लिखना पड़ता। इस घटना को वीर पूजकों ने पहले ही उड़ा लिया होता और छोटे दर्जों की पाठ्य पुस्तकों में इसकी कहानी चलने लगी होती। खेद है कि स्कूल मास्टर के बेंत के डर ने मुझे सच कहते कहने भी झूठ बोलने पर मजबूर कर दिया और इस तरह एक अच्छी खासी कहानी के आदर्शवादी अंत को बिगाड़ कर रख दिया।

धोखा

कथामुख

बाबू मन्नालाल निगम, बी० एस सी०, एल० एल० बी०, एस० टी० ने इस साल लोकल सेल्फ गवनमेंट का डिप्लोमा भी ले लिया और फिर वे सोचने लगे कि जीवन-सग्राम म पतरेबाजी दिखाने के लिए अभी कौन सा कोना सबसे ज्यादा खाली है।

प्रत्येक कोने मे एक से एक तदुरुस्त पैंतरेबाज खडे हुए अपनी मास पेशिया मरोड रहे थे। यह भीडभाड बाबू मन्नालाल पिछले छ सात से देखते चले आ रहे थे। बी० एस सी०, एल० टी० करने के बाद ही उन्हें अपना कालिज छोड देना पडा। उसके बाद उन्हें एक देहाती स्कूल म विज्ञान का अध्यापक बनाया गया। तीन घटे आठवें नवें और दसवें दर्जे मे विज्ञान पढाकर और चौथे घटे म सातवें दर्जे का सस्कृत और बाद के तीन घटो मे तीन छोटी कक्षाओ म अग्रजी और इतिहास पढा चुकने पर भी वे अपनी निगाहो म कभी भी बहुमुखी प्रतिभा के विद्वान होने नही उठ पाये। बेचारे देहाती विद्यार्थी जो केवल इसी सतोष म मगन द थे कि उन्हें अग्रजी स्कूल म पढाया जा रहा है और जो घर पर बडो की पूछ उमेठते हुए अपने बाप के आगे—कार्बन डाई आक्साइड, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, रिलेटिव डेंसिटी विटामिन डी, लिवर आक्सीडिज,

एक सांस में कहकर उसे यह संतोष देते थे कि उसका लड़का साहबों जैसी अंग्रेज़ी बोल रहा है, कभी भी बाबू मन्नालाल की मजबूरी को नहीं पहचान सके। अट्ठावन रुपया प्रति मास तनख्वाह पाकर और अस्सी रुपया की रसीद पर बराबर हस्ताक्षर बनाने पर भी बाबू मन्नालाल ने मन को समझा लिया कि अध्यापक-वृत्ति ही संसार की ऐसी वृत्ति है जिसमे आदमी ईमानदारी से रह सकता है। पर, मई के महीने में उनकी जगह स्कूल के मैनेजर के डी० एस-सी० फेल भतीजे को नियुक्त कराने के लिए बाबू मन्नालाल को जब नौकरी से हटने का नोटिस मिला तो विवश होकर अगली जुलाई से उन्हें वकालत के दर्जे में नाम लिखाना पड़ा।

दो साल डाकघर की क्लर्की और कानून की पढ़ाई को साथ साथ निभाकर बाबू मन्नालाल स्थानीय कलक्टरी मे वकील की हैसियत से प्रकट हुए। ईश्वर की कृपा से शरीर अच्छा था और कपड़े रोबीले थे। पहले ही दिन एक मुक़दमा हाथ लगा। अदालत मे दूसरे पक्ष की ओर से घसीट उर्दू मे लिखा हुआ जवाब दावा पाकर बाबू मन्नालाल चकराए। न जाने किस धोखे मे उन्होने हाई स्कूल तक उर्दू के बजाए हिंदी ले रखी थी। वे चश्मा उतारकर और चेहरे पर अनगिनत झुर्रियां डालकर पढ़ने ही जा रहे थे कि मुवक्किल ने पूछा, "क्या लिखवाया दुश्मन ने वकील साहब, शिकमी कि कब्ज़ेदारी ?"

पूरी तरह कोशिश करने पर भी वकील साहब कुछ पढ़ न सके। सप्रू और काटजू की तस्वीरो को मन ही मन प्रणाम करके बोले, 'शिकमी।'

सुनते ही मुवक्किल उछल पड़ा। बगल में खड़े हुए आदमी को झकझोर कर बोला, "अरे सुनते हो बरखड़ी दुश्मन ने अपने को शिकमी लिखा दिया। तब तो मुकदमा ही खतम हो गया। वही तो कहा, झूठ लिखाने के लिए भी कलेजा चाहिए, कलेजा।"

इस निर्मल उच्छास ने बाबू मन्नालाल निगम बी० एस सी०, एल० एल० बी० (वकील) के हृदय पर तानकर घमा मारा। बोले, 'रुक जाओ भाई, अभी इतना साफ नहीं हो पाया।"

मुवक्किल के आनद को धक्का लगा। उसने पूछा, "क्या साफ नही हुआ ?"

बाबू मन्नालाल ने पास खड़े हुए एक आदमी को शक्ल से उर्दू जानने वाला समझकर कहा, "इसे पढ़िए", और पढने के लिए जवाब-दावा उसके हाथ म दे दिया। मुवक्किल सनकी हुई निगाहों से कुछ देर देखता रहा, फिर बोला, "तुम उर्दू नही जानते वकील साहब ?"

इधर वकील साहब ने कहा, 'ज्यादा नहीं जानता।" उधर पढने वाले ने जोर से पढा, "मुद्दाअलेह आराज़ी मुतनाज़िया पर अर्सा आठ साल से बतौर कब्ज़ेदार काबिज व दखील है।"

मुवक्किल ने उसके हाथ स कागज छीनकर कहा, "बडे धोखेबाज हो वकील साहब। यहा उमर अदालत ही मे बीती है और यही हमे चराने चले हो। उर्दू तक तो जानते नहीं और करोगे वकालत! अरे जाओ बरखडी, दे आओ पंडित राधेसरन को वकालतनामा।"

बाबू मन्नालाल सर नीचा किए हुए चल दिए। चुपचाप घर आए और किताब में शिकमी और कब्ज़ेदार का अर्थ ढूढने लगे।

इस प्रकार प्राय एक साल बीता। शिक्षा विभाग के कोने में हजारों सुदृढ मासपेशियों वाले पैंतरेबाज दिखाई पडे। उधर जाने का साहस न हुआ। वकालत के कोने मे उससे भी अधिक सख्या मे पतरेबाज दिखाई दिए। उर्दू ज्ञान और कानूनी पेंचो ने बाबू मन्नालाल की हड्डी चूर चूर कर दी। अब इस नये डिप्लोमा को लेकर वे म्युनिस्पलिटी के एक्ज़ीक्यूटिव आफिसर बनने चले।

लोगों से सलाह लेकर म्युनिस्पल कमिश्नरो से बाबू मन्नालाल ने मुलाकात की और सबने उन्हें सलाह दी कि वकालत का पेशा सबसे अच्छा है और एक्ज़ीक्यूटिव आफिसर वे उसी को बनाएगे जो कुछ साल कही एक्ज़ीक्यूटिव आफिसर रह चुका हो।

बाबू मन्नालाल के जीवन का एक वर्ष और बीता। अत में उन्होने तय किया कि किसी दूसरे शहर चलकर कुछ दूसरा काम किया जाए, पैसा कमाया जाए, फिर अर्थशास्त्र में एम० ए० करके रिसर्च की जाए

और इस प्रकार संग्राम-क्षेत्र के किसी ऐसे कोने मे जगह की जाए जहाँ कम से कम लोग हों।

'कुछ दूसरा काम' करना आसान था, बशर्ते कि वह मिले। जूते मे पालिश करने वाले ग्रेजुएटो की कहानिया सुनी थी पर एक दृश्य को देख कर उन्हें वे कहानियां भी भूल गईं।

ट्रेन के जिस डिब्बे मे बैठे वे सफर कर रहे थे वही एक गदा लडका एक मुसाफिर के जूतो मे पालिश कर रहा था। बिजली की-सी फुर्ती से उसने जूते चमकाकर रखे ही थे कि मुसाफिर ने कहा, "अभी चमक नही आई। काम सिर्फ दो पैसा का हुआ है।"

लडके ने जूता उठाकर अपने घूटनो मे दबाया और कुर्ते के निचले हिस्से के दोनो सिरो को दोनो हाथो मे खीचते हुए जूते पर खराद-सी करनी शुरू कर दी। मुसाफिर के गाल हसी से फूल उठे। वह बोला, "बस यही तो जूता चमकाने का तरीका है। जूता ब्रुश से साफ भले ही हो जाय, पर कही चमकता भी है!"

बाबू मन्नालाल की विचारधारा इस दृश्य से दूसरी ओर मुड गई। उन्होंने तय किया कि 'कोई और दूसरा काम' इसके अलावा होना चाहिए।

अब तक उनके स्वभाव में काफी परिवर्तन आ गया था। वे ससार की सक्ट पाठशाला (यह शब्द उन्होंने ट्रेनिंग कालिज म सीखा था!) में पढ़ते पढते काफी समझदार हो गए थे। उनके साथ बैठने का अर्थ उनसे जान पहचान हो जाना था। जान-पहचान होने का अर्थ उनके साथ शाम बिताना था। शाम बिताने का अर्थ अपने मनीबैग मे आग लगा देना था। ससार की सक्ट पाठशाला में निपुणता मिलने ही वाली थी कि बाबू मन्नालाल को 'कोई दूसरा काम' ढूढे मिल गया। यह काम मिला बाबू रायबहादुर दवाफरोश, डेंटिस्ट, जादूगर, प्रेतबाधा-निवारक, कीर्तन-कला विशारद की दयापूर्ण दीक्षा से।

कथा

चौराहे के एक कोने मे घेरा बाधकर भीड खडी है। इसमे न जाने

जितने विद्यार्थी, व्यवसायी, बाबू लोग और कुली-मजदूर हैं। बीच में बाबू मन्नालाल कुछ ऐसे विश्वास से भाषण दे रहे हैं मानों प्रताड़ित मानवता के कल्याण के लिए पृथ्वी ने वर्षों की तपस्या के बाद ऐसे पुरुष रत्न को जन्म दिया है।

उनके आगे एक ऊंची मेज है। उससे जमीन तक लटकता हुआ इश्तहार शाम की ढलती हुई धूप मे चमक रहा है। उसमें उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी और गुरमुखी के हरूफ मे लिखा है, "श्रीमान् प्रोफेसर एम० एल निगम बी० एस सी०, एल० एल० बी०, एल० टी०, एल० एस० जी० डी०, आयुर्वेद विशारद, सर्वबाधा निवारक।" मेज पर हजारों तरह की शीशियों व पकेटों में रंग बिरंगी दवाएं रखी हैं।

बाबू मन्नालाल ब्रीचेज वा खाकी कमीज पहने हैं। कमीज पर चमड़े की पट्टी से बंधा हुआ, अपनी आवाज से शेर चीतों व डाकुओं के दिलो में खौफ पैदा करने वाला नकली अमरीकन तमचा झूल रहा है। सर पर काली कलगी वाली एक अजीब सी हैट है। हैट पर एक बल्ब जलता है बुझता है फिर जलता है। उनका चेहरा पहले से अधिक स्वस्थ है और आवाज मे मजे हुए पेशेवरों का अभ्यास है। हजार बातें कहकर दाएं बाएं खड़े हुए दो पहलवानों की ओर इशारा करके वे फिर कहते हैं

'तो हाजरीन, कौन कहता था कि वे दो पिद्दी से इंसान जिनके गाल पिचके थे, आखें गढ़ों में थी, पीठ झुकी थी, सीना नादारद था—वे दो इसान जिनके दिलो मे मायूसी थी, जेबो मे खुदकुशी करने के लिए जहर था वे दो इंसान इस अक्सीर दवा के इस्तेमाल से इस कदर लह लहा उठेंगे कि उनसे हाथ मिलाते हुए गामा और जविस्को भी एक बार सकपका जाए!

भीड़ पर उसका असर जानने के पहले ही बाबू मन्नालाल फिर कड़ककर कहते हैं "हमारी दवा ने इन लोगो को इंसानियत की बुलन्दी पर लाकर खड़ा किया है। है कोई इस भीड़ में जो इनसे हाथ मिलाए ?'

भीड़ चुप है।

फिर एक कड़क "है कोई !"

भीड मे कोई नहीं है।

"तब ऐसी दवा के लिए अगर एक शीशी का चाज चार रुपया है है तो क्या ज्यादा है ? हम बेईमान नही। हम दवा नही, जिंदगी बेचता है। हम हिमालय की गुफाओ मे शेरो की ज़बान निकालकर उसके सत मे चीत का कलेजा मिलाता है, जिससे यह दवा बनती है। हम बेईमान नही जो एक पैसे की खड़िया मे पाव भर पानी डालकर ज़रा-सा लेमनेड घघोल दे और उसे चार रुपयो मे बेच दे। हमने अपना जिस्म गलाया है। कौन कहता है कि हम बेईमान हैं ?'

कोई नही कहता कि बाबू मन्नालाल बेईमान हैं।

"शम लगती हो तो यहा नही, महावीर के मंदिर मे हम रुका है। पब्लिक वहा से दवा ले सकती है। पर शम किस बात की ?"

शम किसी बात नही। कुछ आदमी रुपया निकालते हैं और बिक्री शुरू हो जाती है। फिर खेल खत्म होता है।

कुछ हिस्सा पहलवानो को मिलता है, कुछ हिस्सा दलालो को। अपने हिस्से की ताक में चौराहे का सिपाही आता है। कहता है, "होशियार रहना उस्ताद। दीवारो के भी कान होते हैं।"

चूंकि दीवारो के भी कान होते हैं, जिनके पीछे हाथ वाले मौजूद हैं, इसलिए उसी शाम कुछ का कुछ हो जाता है।

खड़िया मिले पानी को दवा कहकर बेचने व अनेक अन्य प्रकार के अपराधों के खुलने के सिलसिले मे बाबू मन्नालाल हवालात मे डाल दिए गए हैं। रात है और बहुत दिन के बाद उन्हें सोचने का अवसर मिला है कि वे पढ़े लिखे आदमी हैं।

उन्होने बी० एस सी० किया और विद्यालय ने उन्हें विज्ञान का कुमार बना दिया। तब भी आइन्स्टीन और न्यूटन की परपरा क्षितिज सी अस्पृश्य रही।

उन्हें बताया गया था कि शिक्षा विज्ञान पढ़कर मनुष्य देश की उभरती हुई नव-मानवता के मार्ग को प्रशस्त करता है, वह अज्ञान और

अधकार पर जिहाद बोलता है, युग को बदलने के लिए नये तत्वो का सृजन करता है।

उन्होने एल० टी० किया। अटठावन रुपया मासिक पाया, फिर कुछ नही पाया। उन्होने जिन्हें शिक्षा दी, वे भी उन्ही रास्ता मे भटक रहे हैं जहा अब भी बाबू मन्नालाल की बेबसी झलक रही है।

उन्होने कानून पढा। साधारण मानव-समुदाय पर अपनी विद्वत्ता मुखर दृष्टि फेंककर भाग्य का निणय तो दूर रहा, वे उनकी अज्ञानता का सकट तक न दूर कर पाए। वकील होकर भी वे गूगे की आवाज न बन सके। वे खुद अपनी आवाज से अनभिज्ञ रहे।

फिर भी विश्वविद्यालयो ने मजबूत और चिकने कागजों पर चमकते हुए अक्षरा मे लिखकर उनसे बताया, 'जाओ, तुम वैज्ञानिक हो, तुम शिक्षक हो, तुम विधानज्ञ हो।"

उन्हें न जाने कितनी शीशियों मे अचूक कही जाने वाली दवायें मिली, पर वे दवायें न थी। वे पानी और खडिया का निरथक घोल भर थी।

बाबू मन्नालाल की आखो म विवशता के आसू आ जाते हैं। बडे बडे वैज्ञानिक, विद्वान्, न्यायपति मन मे आधी उठाते हुए आते हैं और आंखो से पानी बनकर निकलने लगते हैं।

और वेहया नीद आकर उनकी आखें मूदती है उनके अग ढीले कर देती है और उन्हें अपने आंचल मे ढाक लेती है।

उपसहार

चूकि अभी अधेरा है और बाबू मन्नालाल अभी सो रहे हैं, इसीलिए उनकी पलको का गोलापन तुम नही देख रहे हो।

चौराहे पर

चौराहे से थोडा हटकर चार-पाच टैक्सिया—झडो, चुनाव चिह्नों, लाउडस्पीकरों से लैस—खडी थी। उनके बानेट मे बठे हुए चुनाव-सेनानी अपने अपन उम्मीदवार की ओर से अपना अपना डायलाग बोल रहे थे। नागरिक भीड बन गए थे।

चौराहे पर एक नागरिक एक टक्सी के नीचे आ गया। जब तक उसे बाहर किया जाए, मौत के हाथो उसकी नागरिकता के अधिकार छिन गए। नागरिको ने टैक्सी को घेर लिया। 'इक्लाब जिंदाबाद' आदि के नारे लगने लगे। 'आदि' मे गालिया भी शामिल थी।

टैक्सी पर पीला झडा लगा था। उससे एक आदमी बाहर निकला। बॉनेट पर खडे होकर उसने भीड को यो देखा जैसे कन्याकुमारी से मानसरोवर और अटक से कटक तक निगाह फेंक रहा हो। यह इतमीनान करके कि राष्ट्र उसी का है, बोला, "बधुआ, शान्त हो जाओ। टैक्सी ड्राइवर को मैं पहले ही पुलिस के हवाले कर चुका हू।"

"पर पुलिस तो अभी आई नहीं है।' नागरिको ने कहा। बात हमेशा की तरह सही थी, पुलिस अभी रास्ते मे ही थी।

"पुलिस का सिपाही पहले ही से हमारे साथ था। हमने उ साथ टक्सी ड्राइवर को थाने भेज दिया है।" उसके चेहरे पर दूरद...

का तेज झलकने लगा। ओड ने कहा, 'हम टक्सी म आग लगा दें।"

"बधुओ, इसके लिए तुमने एक मिनट की देर कर दी है। वार्ता आरभ हो जाने के बाद हिंसा का कोई अथ नहा है।"

कुछ लोग मुर्दे का थान और अस्पताल के रास्ते श्मशान ले गए। चौराहे पर कुछ और शार, मोटरवालो और बिना मोटर वालो का वग सघष, पुरानी दुघटनाओ की याद, गीता के उद्धरण, जिदगी पानी है का अन्वेषण—थोडी देर मे आमदरफ्त पहल की तरह जारी हो गई। चौराहे स कुछ दूर चुनाव अभियान के टक—रग बिरगे झडे और पोस्टरावाली टक्सिया—भाषणो के गोले निकालने लगे।

चौराहे के एक ओर कॉफीहाउस था। जहा धुआ होता है वहा आग होती है' के न्यास से कॉफीहाउस मे कुछ मनीषी—इटेलेक्चुअल—मोजद थे और अपनी बहस से कुछ समस्याओ की समस्या में समस्या वान् थ। दुघटना की बात सुनकर एक इटेलक्चुअल ने कहा, दवीदीन जी अब नही रहे।"

'कौन दवीदीनजी?'

"वही जो अब नही रहे। उन्हीं का गेक्सिडेंट हुआ है।'

"थ कौन?"

'स्वतत्रता सग्राम के सेनानी थे। १९२१ मे १९२९ म, १९४२ मे हर मौके पर जेल गए थे। स्वाभिमानी के पुलिटिकल पेंशन तक नही ली, मिनिस्टरी भी नहीं ली खादी वोड तक को नहीं छूआ भारत सवक समाज की जीप और उसके आनरेरियम का ठुकरा दिया—यानी कुछ कुछ पागल हो गए थे। आज बेचारे टैक्सी के नीचे आ गए।'

एक मनीषी—जो किसी दफ्तर मे काम करत थे—बोले, 'ओह! दवीदीनजी! द वी दी न जी! व तो इस शहर के जाने माने शहीदो म थे। आज तो सरकारी दफ्तरा म छुट्टी हो जानी चाहिए, बाजार म हडताल, शोकसभा।'

मेरे पास ऐस मौके की कविता है, पर यहा के अखबारवाले पसा बहुत कम देते हैं।'

चौराहे से हटकर खड़ी हुई टक्सियो के आसपास अपनी-अपनी भीड थी। चुनाव के सभी उम्मीदवारों को सदमा पहुचा था।

बिल्कुल ही बाए चलने वाली पार्टी का उम्मीदवार खुद अपनी टैक्सा के बानेट पर खड़ा होकर बोल रहा था "बताइए, क्या आप ऐसे हत्यारा को अपना वोट देंगे जिन्होंने अपनी कार के नीचे अमर शहीद देवीदीनजी को कुचल दिया है ?"

भीड म से कोई बोला 'अमरशहीद पहले नहीं है, पहले कुचल गए हैं उसके बाद अमरशहीद हुए हैं।"

उसके साथी ने उस टाका, 'यह तो सभी जानत है। अमरशहीद ही ऐसी पदवी है जिसके पीछे ब्रैकेट मे हमेशा 'मरणोपरान्त' यानी 'पास्थ्यूमस लिखा रहता है।

दूसरी टैक्सियो के लाउडस्पीकर भी घुमा फिराकर वही बात कर रहे थे, क्या आप ऐसे प्रतिक्रियावादियो को—समाज क शत्रुओ को—हत्यारों को वोट देंगे ?'

तब तक, जिन्हें हत्यारा कहा जा रहा था उनकी पार्टी की एक जीप आ गइ। उससे एक दूसरा नमूना निकलकर बानट पर खड़ा हो गया। जनता चीखती हुई उसकी ओर बढी। वह कहन लगा बधुओ अमरशहीद देवीदीनजी के न रहने का हमे खेद है। वे वद्ध थे और मोटर की चपेट को झल नहीं सके। पर उसकी चचा करना आवश्यक है। उस पर कानूनी कारवाई हो रही है।

'प्रश्न यह है, उनके निधन का जिम्मेदार कौन है ? गीता मे कहा है ।'

उसन जनता पर वाल्टियां गीता उलाचकर अपनी उगली उस पार्टी की टैक्सी की ओर उठाइ जिसकी सरकार—अल्पमत हुए भी—प्रदेशो म चल रही थी। चीखकर कहा, 'देवीदीनजी के हत्यारे वे है।

वह चीखता रहा 'उन्नीस सौ बयालिस स अब तक उन्होन स्वतन्त्रता सग्राम क अमर सनानी क लिए क्या किया ? बधुओ उन्ही म जाकर पूछो। वे स्वय तो बडे बडे पदो पर विराजमान है, बगलो म रहत हैं बडी-बडी मोटरो पर चलते हैं, शानदार होटलो म खाते है

शासन चला रहे हैं। और उन्होंने देवीदीनजी को क्या दिया ? तिरस्कार ! उपेक्षा ! भूख ! पागलपन !

"बधुओ ! इन कृतघ्नो ने देवीदीनजी को पहले ही मार दिया था। बधुओ, देवीदीनजी की हत्या आज नही, पच्चीस साल पहले हुई थी।" सन्नाटा ! फिर तालिया !

'क्या आपकी आखें अब भी नही खुलीं ? क्या आप अपना बहुमूल्य वोट अपने ही शहीद साथियो को इस तरह ठुकराने वाले ।

'इधर हमारी पार्टी न हमेशा ऐसे शहीदो की पूजा की है। छिपा छिपाकर हम उनकी सहायता करते रहे हैं। आज भी हमने उनके शोकसतप्त परिवार को पाच हजार मुद्राओ का गुप्तदान दिया है ।'

जिस पार्टी वे प्रतिनिधि शासन चला रहे थे, बगलो म रहते थे, होटलो मे आदि आदि थे, उनका नेता अपनी टैक्सी पर खडा होकर चीखने लगा था, 'वे हम जस पदलोलुप नही थे। जीवन भर उन्होने किसी स कोई मन्द नही ली, पर अब हमने उनके परिवार का दो सौ रुपये मासिक की पेंशन देने का निणय लिया है ।'

और वामपथी पार्टी हमने जनता पुस्तक भडार की एजेंसी पहले ही उनके लडके को दे दी है। कामरेड लेनिन का पूरा साहित्य ।'

एक पार्टी जा हर घटना की कमजोर वर्गों से जोड-गाठ करती थी, चीखने लगी, अगर देवीदीनजी हरिजन नही होते तो क्या उन्ह इस तरह भर चौराहे पर कुचला जा सकता था ? अब शहर म दिन दहाडे ऐसा हो सकता है ता दूर के गाव मे क्या नही होता होगा ?

'हरिजनो पर सवर्णों का यह अत्याचार ! नही चलेगा, नहीं चलेगा !'

फिर नही चलेगा, नही चलेगा !' के नारे।

यह हरिजन भाइयों का मुद्दा है। इस पर हमें सोचना होगा। यह भी याद रखें। हमारी पार्टी पूजीपतियो की पार्टी नही है। इसीलिए हम देवीदीनजी के परिवार को रुपयो का घूस नही देना चाहते। पर हरिजन भाई खुद उनके लिए चदा कर रहे हैं।

एक स्वतन्त्र उम्मीदवार कह रहा था, वह देखिए, देवीदीनजी के

भतीजे मेरे पास खड़े हैं। आप उनकी बात सुनिये। वैसे तो उनके परिवार को इसी वक्त अपनी आढ़त में पत्ती दे सकता हूं पर राजनीतिक शुद्धता का तकाज़ा है कि ऐसी बात न उठाई जाए। देवीदीनजी अपने ही आदमी थे। तो, अब आप उनके भतीजे—क्या नाम है जी आपका—की बात सुनें।"

दूसरे स्वतंत्र उम्मीदवार, और उम्मीदवारों में उम्मीदवार भी बोलने लगे थे। देवीदीनजी के नाम पर नीलाम की फिज़ा पैदा हो गई थी, सिर्फ एक डुगडुगी की कमी थी। अच्छा खासा मजमा हो गया था और चौराहे—पर—पर—पुलिस—द्वारा—दुर्घटना—रोकने की—असफलता—के—विरोध में होने वाली नगरव्यापी हड़ताल के कारण बढ़ता ही जा रहा था।

अमरशहीद का झंडा बुलंद था। उनके त्याग की प्रशंसा हो रही थी। उनके चरण चिह्नों पर चलने का उपदेश दिया जा रहा था। सड़क के एक किनारे एक नाराज़ नौजवान अपने निकम्मे बाप को डांट रहा था 'तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम भी १९४२ में जेल गए थे। देश के लिए तुम उतना कर सकते थे, पर अब अपने लड़कों के लिए इतना भी नहीं कर सकते जितना आज देवीदीनजी ने सड़क पर इधर से उधर जाते कर दिखाया है?"

शिवपालगज

शिवपालगज गाव था, पर वह शहर से नजदीक और सडक के किनारे था। इसलिए बडे-बडे नेताओं और अफसरो को वहा तक आने मे कोई सैद्धातिक ऐतराज नही हो सकता था। कुओ के अलावा वहा कुछ हैडपप भी लगे थे इसलिए बाहर के आनेवाले बडे लोग प्यास लगने पर अपनी जान को खतरे मे डाले बिना, वहा का पानी पी सकते थे। खाने का भी सुभीता था। वहा के छोटे छोटे अफसरो मे कोई न कोई ऐसा निकल ही आता था जिसके ठाट बाट देखकर वहा वाले उसे परले सिरे का बेईमान समझते पर जिसे देखकर ये बाहरी लोग आपस मे कहते कितना तमीजदार है। बहुत बडे खानदान का लडका है। देखो न इस चौका साहब की लडकी ब्याही है। इसलिए भूख लगने पर अपनी ईमानदारी को खतरे में डाले बिना वे लोग खाना भी खा सकते थे। कारण जो भी रहा हो उस मौसम मे शिवपालगज मे जननायको और जनसेवको का आना जाना बडे जोर से शुरू हुआ था। उन सबको शिवपालगज के विकास की चिंता थी और नतीजा यह होता था कि वे लेक्चर देते थे।

वे लेक्चर गजहो के लिए विशेष रूप से दिलचस्प थे क्योंकि इनमे प्राय शुरू से ही वक्ता श्रोता को और श्रोता वक्ता को बेवकूफ मानकर

चलता था जो कि बातचीत के उद्देश्य से गजहो के लिए आदर्श परिस्थिति है। फिर भी लेक्चर इतने ज्यादा होते थे कि दिलचस्पी के बावजूद लोगो को अपच हो सकता था। लेक्चर का मजा तब है जब सुननेवाले समझें कि यह बकवास कर रहा है और बोलनेवाला भी समझे कि मैं बकवास कर रहा हू। पर कुछ लेक्चर देने वाले इतनी गभीरता मे चलते हैं कि सुनने वाले को कभी-कभी लगता था यह आदमी अपने कथन के प्रति सचमुच ही ईमानदार है। एसा सदेह होते ही लेक्चर गाढा और फीका बन जाता था और उसका असर श्रोताओ के हाजमे के बहुत खिलाफ पडता है। यह सब देखकर गजहो ने अपनी-अपनी तदुरस्ती के अनुसार लेक्चर ग्रहण करने का समय चुन लिया था, कोई सबेरे खाना खाने के पहले लेक्चर लेता था कोई दोपहर को खाना खाने के बाद। ज्यादातर लोग लेक्चर की सबसे बडी मात्रा दिन के तीसरे पहर ऊघने और शाम को जागने के बीच मे लेते थे।

उन दिनो गाव मे लेक्चर का विषय खेती था। इसका अर्थ कदापि नही कि पहले कुछ और था। वास्तव मे पिछले कई सालो से गाववालो को फुसलाकर बताया जा रहा था कि भारतवर्ष एक खेतिहर देश है। गाववाले इस बात का विरोध नही करते थे, पर प्रत्येक वक्ता शुरू से ही यह मानकर चलता था कि गांववाले इसका विरोध करेंगे। इसीलिए वे एक के बाद दूसरा तर्क ढूढ कर लाते थे और यह साबित करने मे लगे रहते थे कि भारतवर्ष एक खेतिहर देश है। इसके बाद वे यह बताते थे कि खेती की उन्नति ही देश की उन्नति है। फिर आगे की बात बताने के पहले ही प्राय दोपहर के खाने का वक्त हो जाता और वह तमीजदार लडका, जो बडे सपन्न घराने की औलाद हुआ करता था और जिसको चौको साहब की लडकी ब्याही रहा करती थी वक्ता की पीठ का कपडा खीच खीचकर इशारे से बताने लगता कि चाचाजी खाना तैयार है। कभी-कभी कुछ वक्तागण आगे की बात भी बता ले जाते थे और तब मालूम होता कि उनकी आगे की और पीछे की बात मे कोई फर्क नही है, क्योकि घूम फिरकर बात यही रहती थी कि भारत एक खेतिहर देश है तुम खेतिहर हो, तुमको अच्छी खेती करना

चाहिए, अधिक अन्न उपजाना चाहिए। प्रत्येक वक्ता इसी सन्देह में गिरफ्तार रहता था कि काश्तकार अधिक अन्न नहीं पैदा करना चाहते।

लेक्चरों की कमी विज्ञापनों से पूरी की जाती थी और एक तरह से शिवपालगंज में दीवारों पर चिपके या लिखे हुए विज्ञापन वहां की समस्याओं और उनके समाधानों का सच्चा परिचय देते थे। मिसाल के लिए, समस्या थी कि भारतवर्ष एक खेतिहर देश है और किसान बदमाशी के कारण अधिक अन्न नहीं उपजाते। इसका समाधान यह था कि किसानों के आगे लेक्चर दिया जाए और उन्हें अच्छी-अच्छी तस्वीरें दिखाई जाएं। उनके द्वारा उन्हें बताया जाए कि तुम अगर अपने लिए अन्न पैदा नहीं करना चाहते तो देश के लिए करो। इसी से जगह-जगह पोस्टर चिपके हुए थे जो काश्तकारों से देश के लिए अधिक अन्न पैदा कराना चाहते थे। लेक्चरों और तस्वीरों का मिला-जुला असर काश्तकारों पर बड़े जोर से पड़ता था और भोले से-भोला काश्तकार भी मानने लगता था कि हो न हो इसके पीछे भी कोई चाल है।

शिवपालगंज में उन दिनों एक ऐसा विज्ञापन खासतौर से मशहूर हो रहा था जिसमें एक तंदुरुस्त काश्तकार सिर पर अंगोछा बांधे, कानों में बालियां लटकाये और बदन पर मिर्जई पहने गेहूं की ऊंची फसल को हंसिये से काट रहा था। एक औरत उसके पीछे खड़ी हुई, अपने आपमें बहुत खुश कृषि विभाग के अफसरों वाली हंसी हंस रही थी। नीचे और ऊपर अंग्रेज़ी और हिंदी अक्षरों में लिखा था, 'अधिक अन्न उपजाओ।' मिर्जई और बालीवाले काश्तकारों से जो अंग्रेज़ी के विद्वान थे उन्हें अंग्रेज़ी इबारत से और जो हिंदी के विद्वान् थे, उन्हें हिंदी से परास्त करने की बात सोची गई थी, और जो दो में से एक भी भाषा नहीं जानते थे वे भी कम-से-कम आदमी और औरत को तो पहचानते ही थे। उनसे आशा की जाती थी कि आदमी के पीछे हंसती हुई औरत की तस्वीर देखते ही वे उसकी ओर पीठ फेरकर दीवानों की तरह अधिक अन्न उपजाना शुरू कर देंगे। यह तस्वीर

शिवपालगंज में आजकल कई जगह चर्चा का विषय बनी थी, क्योंकि यहां वालों की निगाह में तस्वीरवाले आदमी की शक्ल कुछ-कुछ बद्री पहलवान से मिलती थी। औरत की शक्ल के बारे में गहरा मतभेद था। वह गांव की देहाती लड़कियों में से किसकी थी, यह अभी तय नहीं हो पाया था।

इससे सबसे ज्यादा जोर शोरवाले विज्ञापन खेती के लिए नहीं, मलेरिया के बारे में थे। जगह-जगह मकानों की दीवारों पर गेरू से लिखा गया था कि "मलेरिया को खत्म करने में हमारी मदद करो, मच्छरों को समाप्त हो जाने दो।" यहां भी यह मानकर चला गया था कि किसान गाय भैंस की तरह मच्छर भी पालने को उत्सुक हैं और उन्हें मारने के पहले किसानों का हृदय-परिवर्तन करना पड़ेगा। हृदय-परिवर्तन के लिए रोब की जरूरत है, रोब के लिए अंग्रेजी की जरूरत है, तभी मलेरिया उन्मूलन में सहायता करने की सभी अपीलें प्रायः अंग्रेजी में लिखी गई थीं। इसीलिए प्रायः सभी लोगों ने इनको कविता के रूप में नहीं, चित्रकला के रूप में स्वीकार किया था और गेरू से दीवार रंगने वालों को मनमानी अंग्रेजी लिखने की छूट दे दी थी। दीवारें रंगती जाती थीं, मच्छर मरते जाते थे। कुत्ते भूका करते थे लोग अपनी राह चलते रहते थे।

एक विज्ञापन में भोले भाले ढंग से बताया गया था कि हमें पैसा बचाना चाहिए। पैसा बचाने की बात गांववालों को उनके पूर्वज पहले ही बता गए थे और लगभग प्रत्येक आदमी को अच्छी तरह मालूम थी। इसमें सिर्फ इतनी नवीनता थी कि यहां भी देश का जिक्र था, कहीं कहीं इशारा किया गया था कि अगर तुम अपने लिए पैसा नहीं बचा सकते तो देश के लिए बचाओ। बात बहुत ठीक थी क्योंकि सेठ साहूकार, बड़े बड़े ओहदेदार, वकील, डॉक्टर—ये सब तो अपने लिए पैसा बचा ही रहे थे, इसलिए छोटे-छोटे किसानों को देश के लिए पैसा बचाने में क्या ऐतराज हो सकता था! सभी इस बात से सिद्धांत-रूप में सहमत थे कि पैसा बचाना चाहिए। पैसा बचाकर किस तरह कहां जमा किया जाएगा, ये बातें भी विज्ञापनों और लेक्चरों में साफ

तौर से बताई गई थीं और लोगों को उनसे भी कोई आपत्ति न थी। सिर्फ लोगों को यही नहीं बताया गया था कि तुम्हारी मेहनत के एवज में तुम्हें कितना पैसा मिलना चाहिए। पैसे की बचत का सवाल आमदनी और खर्च से जुड़ा हुआ है, इस छोटी-सी बात का छोड़कर बाकी सभी बातों पर इन विज्ञापनों में विचार कर लिया गया था और लोगों ने उनको इस भाव से स्वीकार कर लिया था कि वे बेचारे दीवार पर चुपचाप चिपके हुए हैं न दाना मांगते हैं, न चारा, न कुछ लेते हैं, न देते है। चलो, इन तस्वीरों को छे०ो नहीं।

पर रंगनाथ को जिन विज्ञापनों ने अपनी ओर खींचा, वे पब्लिक सेक्टर के विज्ञापन न थे, प्राइवेट सेक्टर की देन थे। उनसे प्रकट होने वाली बातें कुछ इस प्रकार थीं "उस क्षेत्र में सबसे ज्यादा व्यापक रोग दाद है, एक ऐसी दवा है जिसको दाद पर लगाया जाए तो उसे जड से आराम पहुचता है, मुह से खाया जाए तो खांसी जुकाम दूर होना है बताशे में डालकर पानी मे निगल लिया जाय तो हैज म लाभ पहुचता है। ऐसी दवा दुनिया में कहीं नहीं पाई जाती। उसके आविष्कारक अब भी जिंदा हैं, यह विलायतवालो की शरारत है कि उन्हें आज तक नोबेल पुरस्कार नहीं मिला है।'

इस देश मे और भी बडे-बडे डॉक्टर हैं जिनका नोबेल पुरस्कार नही मिला है। एक कस्बा जहानाबाद मे रहते हैं और चूंकि वहा पर बिजली आ चुकी है, इसलिए वे नामर्दी का इलाज बिजली स करते हैं। अब नामर्दों को परेशान होने की जरूरत नही है। एक दूसरे डाक्टर जो कम-से-कम भारत में तो मशहूर हैं ही, बिना आपरेशन के अण्डवृद्धि का इलाज करते हैं। और यह बात शिवपालगज मे किसी भी दीवार पर तारकोल के हरूफ म लिखी हुई पाई जा सकती है। बस बहुत से विज्ञापन बच्चों में सूखा रोग आखो की बीमारी और पेचिश आदि से भी सबद्ध हैं पर असली रोग सख्या मे कुल तीन ही हैं—दाद अडवृद्धि और नामर्दी, और इनके इलाज की तरकीब शिवपालगज क लडके अक्षर ज्ञान पा लेने के बाद ही दीवारो पर अंकित लेखों के सहारे जानना शुरू कर देते हैं।

विज्ञापनों की इस भीड़ में वैद्यजी का विज्ञापन नवयुवकों के लिए आशा का संदेश अपना अलग व्यक्तित्व रखता था। वह दीवारों पर लिखे 'नामर्दी का बिजली से इलाज' जैसे अश्लील लेखों के मुकाबले में नहीं आता था। वह छोटे-छोटे कुक्कडों, दुकानों और सरकारी इमारतों पर—जिनके पास पेशाब करना और जिन पर विज्ञापन चिपकाना मना था—टीन की खूबसूरत तख्तियों पर लाल-हरे अक्षरों में प्रकट होता था और सिर्फ इतना कहता था, 'नवयुवकों के लिए *आशा का संदेश*', नीचे वैद्यजी का नाम था और उनसे मिलने की सलाह थी।

एक दिन रंगनाथ ने देखा, रोगों की चिकित्सा में एक नया आयाम जुड़ रहा है। सबेरे से ही कुछ लोग दीवारों पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख रहे हैं बवासीर। यह शिवपालगंज की उन्नति का लक्षण था। बवासीर के चार आदमकद अक्षर चिल्लाकर कह रहे थे कि यहां पेचिश का युग समाप्त हो रहा है, मुलायम तबीयत, दफ्तर की कुर्सी, शिष्टतापूर्ण रहन-सहन, चौबीस घंटे चलनेवाले खान-पान और हल्के परिश्रम का युग धीरे-धीरे संक्रमण कर रहा है और आधुनिकता के प्रतीक-सी बवासीर सर्वव्यापी नामर्दी का मुकाबला करने के लिए मैदान में आ रही है। शाम तक वह दैत्याकार विज्ञापन एक दीवार पर रंग-बिरंगी छाप छोड़ चुका था और दूर-दूर तक ऐलान करने लगा था बवासीर का शर्तिया इलाज।

देखते-देखते चार-छः दिन में ही सारा जमाना बवासीर और उसके शर्तिया इलाज के नीचे दब गया। हर जगह वही विज्ञापन चमकने लगा। रंगनाथ को सबसे बड़ा अचंभा तब हुआ जब उसने देखा, वही विज्ञापन एक दैनिक समाचार-पत्र में आ गया है। यह समाचार-पत्र रोज दस बजे दिन तक शहर से शिवपालगंज आता था और लोगों को बताने में सहायक होता था कि स्कूटर और ट्रक कहां भिड़े, अब्बासी नामक कथित गुंडे ने इरशाद नामक कथित सब्जीफरोश पर कथित छुरी से कहां कथित रूप में वार किया। रंगनाथ ने देखा कि उस दिन अखबार के पहले पृष्ठ का एक बहुत बड़ा हिस्सा काले रंग में रंगा हुआ है और उस पर बड़े-बड़े सफेद अक्षरों में चमक रहा है बवासीर।

अक्षरों की बनावट वही है जो यहां दीवारों पर लिखे विज्ञापन मे है। उन अक्षरो ने बवासीर को नया रूप दे दिया था, जिसके कारण आस पास की सभी चीजें बवासीर की मातहती में आ गई थी। काली पृष्ठभूमि मे अखबार के पन्ने पर चमकता हुआ 'बवासीर' दूर से ही आदमी को अपने मे समेट लेता था। यहा तक कि सनीचर, जिसे बडे बड़े आतंरिक अक्षर पढने मे कष्ट होता था, अखबार के पास खिंच आया और उस पर निगाह गडाकर बैठ गया। बहुत देर तक गौर करने के बाद वह रगनाथ से बोला, "वही चीज है।"

इसमें अभिमान की खनक थी। मतलब यह था कि शिवपालगंज की दीवारो पर चमकनेवाले विज्ञापन कोई मामूली चीज नहीं हैं। ये बाहर अखबारो में छपते हैं, और इस तरह जो शिवपालगंज में है, वही बाहर अखबारो में है।

रगनाथ तख्त पर बैठा रहा। उसके सामने अखबार का पन्ना तिरछा होकर पडा था। अमरीका ने एक नया उपग्रह छोडा था, पाकिस्तान-भारत-सीमा पर गोलिया चल रही थी, गेहूं की कमी के कारण राज्यों को कोटा कम किया जाने वाला था, सुरक्षा समीति में दक्षिण अफ्रीका के कुछ मसलो पर बहस हो रही थी, इन सब अबाबीलों को अपने पजे मे किसी दैत्याकार बाज की तरह दबाकर वह काला सफेद विज्ञापन अपने तिरछे हरुफ में चीख रहा था बवासीर! बवासीर! इस विज्ञापन के अखबार मे छपते ही बवासीर शिवपालगंज और अंतर्राष्ट्रीय जगत् के बीच सपर्क का एक सपन्न माध्यम बन चुकी थी।

—'राग दरबारी' से।

मिया की जूती मिया के सिर

उन्होंने पहुचते ही देख लिया कि लबे चौड़े बगले के एक हिस्से में 'अमरूद विकास का क्षेत्रीय कार्यालय' नामक सरकारी दफ्तर है और गुलदावदी के गमले, बगले के आगे की मुलायम दूब और गुलाब और नैस्टर्शियम की ताजी क्यारियां दफ्तर की समृद्धि का अग हैं क्योंकि बगले के जिस हिस्से में दफ्तर न था वहा यह सब भी न था। उन्होंने यह भी देख लिया था कि मकान मालिक बगले के दुमजिले पर कुछ कमरों में रहता है। पहली मजिल मे अमरूद विकास के दफ्तर से सटे हुए दो कमरे थे जिनके आगे अगूर की लताए किसी पोर्टिको की छत की तरह बांस के हरे ढांचे पर फैली थीं। हरियाली में डूबे हुए इन कमरों में रहने की कल्पना ने नारायण को उत्कंठित किया, पर उसके मन ने उसे वहीं टोका कि यह कल्पना कभी यथार्थ नहीं होगी। उसके बाद ही कुछ लतरों के बीच से झांकते हुए एक साइनबोर्ड से पता चला कि इन कमरों म भी एक दफ्तर है। साइनबोर्ड में लिखा था 'कार्यालय जिला मत्स्य क्रय विक्रय अधिकारी'।

मकान मालिक ने मिलते ही गलत, किंतु [illegible] बताया कि दोनों कमरे कल ही उठ चुके हैं, उन्हें [illegible] आफिसर साहब ने चार सौ रुपये माहवार किराये पर ले [illegible] है।

आप पहले आ गए होते तो इनवार थोड़े ही था, किराये म दस-बीस कम मिलत तब भी कोई हज न था। बारीन न कहा कि तब भी आना बेकार होता क्योंकि नारायण की तनख्वाह तो केवल पाच सौ रुपया है। मकान-मालिक बोला कि तब आपको रवींद्र नगर एक्टेंशन म मकान न ढूढना चाहिए। सरकारी एलाटमट या नगर निगम का कोई फ्लैट मिले, तभी आपका काम चल सकता है क्योंकि 'सत्तर रुपये महीने मे तो अब सडास तक नही मिलता'। सडास का उल्लेख कर चुकने पर मकान-मालिक ने अपने लडके को चाय लाने का हुक्म दिया।

मकान मालिक और बारीन हवलदार मकानो की समस्या पर बात करने लगे, पर अचानक विचित्र ढग से उनकी भूमिकाए उल्ट गइ। बारीन हाल्दार ने कहा कि मकान तो आपने बनवा लिया पर सरकारी कर्जे की किश्तें और ब्याज चुकान म, पानी और मकान के टैक्स म और इनकम टैक्स मे पूरा किराया साफ हो जाता होगा आपके हाथ तो बस झझट ही लगता होगा। इसके विपरीत मकान मालिक ने कहा कि चाहे जितना भी टैक्स देना पडे, जेब स थोडे ही जाता है, कर्ज की किस्त और टक्सो के बाद भी कुछ न कुछ बचा ही रहता है और सच पूछो तो इस तरह आठ-दस साल के बाद पूरा मकान फोकट का हो जाएगा।

उसने कहा, "तुमसे क्या चोरी, बारीन दा, मुझी को देखो। मेरे बाप की भी दम न थी कि इतनी बडी कोठी बनवाता। वे तो ककड साहब थे जिन्होने एक रात मुझे फोन किया। बोले, 'राजिदर, तू एक प्लाट चाहता था न ? कल से नगर निगम के प्लॉट एलाट होने वाले हैं। जो पहले दरखास्त लगा देगा, उसी को मिलेंगे। कल सबेर यहा दफ्तर मे हजारो की भीड लग जाएगी और तू टापता रह जाएगा। देख तू ऐसा कर तू अपनी दरखास्त इसी वक्त मेरे पास भेज दे। तेरा नाम नबर तीन या चार पर दज करा दूगा तुझे क्यू मे नही लगना पडेगा। मैंने कहा कि 'साहब, दरखास्त के साथ दो हजार रुपये का चक भी लगाना पडता है। ये रुपया म किसकी जेब काटकर ले आऊ। वे बोले कि हाउसिंग इजीनियर होकर भी एक प्लाट तेरे लिए नहा

दिला पाया तो लानत है मुझ पर। देख, तू ऐसा कर कि एक चेक मेरे पास भज दे। बक मे रुपया हो या न हो, तू फिक्र न कर। मैं दो तीन महीने तेरा चेक रुकवाये रहूगा और उसे बक मे तभी भेजूगा जब तू इसके लिए हरी झडी दे देगा।' इस तरह से तो बारीन दा, प्लॉट मिला। फिर, कर्ज का झझट। किसी तरह सरकारी कर्ज भी मिला, कुछ एल० आई० सी० वालो ने दिया और तब यह बगला बनकर तैयार हुआ। आपकी दुआ से सरकारी दफ्तरो ने किराये पर ले लिया है। चलो, एक काम होना था, हो गया। अब महकमे वाले नौकरी से जबरन रिटायर करने पर तुले हैं। मैं भी सोचता हू कि कर दें रिटायर। कोई मेरा किराये का सोलह सौ रुपया तो छीन नही लेगा। इसी कुटिया मे पडा रहूगा और जिंदगी के बाकी दिन हाईकोर्ट की रिट लडने म काटूगा। हुह ! बिना मुकदमा लडे यू ही रिटायर थोडे हो जाऊगा।"

कमरा काफी बडा था। हलके हरे रग की मोजेक के फश पर नया फर्नीचर डाला गया था। एक ओर दीवार स सटाकर दीवान रखा गया था। नीचे के कमरो के किराये पर उठ जाने की बात सुनकर नारायण इस मकान और मकान-मालिक से उदासीन हो गया था, पर बारीन उससे मकान बनाने की समस्याओ पर विस्तार स बात करने लगा था। नारायण उस कमरे को देखता रहा। देखत-देखते उस लगा कि वह यहा पहले भी आया है और इस दीवान पर बठकर सितार बजा चुका है।

बारीन और मकान मालिक को एक किनारे खिसकाकर नारायण ने एक समानातर लोक की रचना की जिसमे सबेरा था, घने पेडो को बींधकर सूरज की धूपछाही रोशनी कमरे मे खुल रही थी। सबरा था, पर सबेरे की परिचित आवाजें नही थी। वह दीवार पर सितार लिये बैठा था। चारों ओर घना नीरध्र सन्नाटा था।

अहीर भरव की गत को तोडते हुए बारीन हालदार ने कहा, चलो भई, तुम तो यहीं बैठकर सोने लगे।"

मकान मालिक ने उन्हें मुदित मन विदा दी वादा किया कि उधर

कोई कमरा-वमरा खाली हुआ तो बताऊंगा, वैसे इस तरफ किराये बहुत बढ गए हैं। सरकारी दफ्तरों वाले एक से एक नफीस बंगले चार-चार हजार रुपये महावार पर लेने लगे हैं। कोई अब पुराने ढंग की इमारत मे बैठना ही नहीं चाहता, सब दफ्तर के लिए मोजेक का फर्श और झिलमिलाओ बाथरूम मांगते हैं। और ये जो सरकारी कंपनिया हैं न, ऊट कारपोरेशन और हाथी कारपोरेशन—ये तो इतनी शाहदिली मे किराया देती हैं कि लेने वालों तक के दिल लरज उठते हैं। तब तुम्ही बताओ बारीन दा, इस कॉलोनी मे प्राइवेट मकान लेने की भला हिम्मत होगी किसी की ?

सडक पर आते ही चारों ओर नयी-नयी काट के बंगलो और हरी भरी फुलवारियों ने नारायण को अहीर भैरव की गत की ओर दुबारा खींचा, पर बारीन हालदार के चेहरे ने उसे रोक लिया। उसका मुह छाती पर हिलग आया था और लगता था कि उसकी आखे अदरूनी नाटक के दु खात दृश्य मे खोई हुई हैं। नारायण ने सोचा कि यह राजनीति मे मात खाने का सदमा है जिसके धमाके का असर बारीन-दा पर इतनी देर बाद हो रहा है। उसने चाहा, पर कुछ कहकर बारीन को उस त्रासद मुद्रा से उबारने का साहस नहीं बटोर सका।

पर वह बारीन के लिए यू ही आशक्ति हो रहा था। बारीन की खुली हंसी ने उसे चौंका दिया। अपने काले-कलूटे गाल को जोकरों की तरह रगड़ता हुआ वह कह रहा था, "कभी यह कहावत सुनी है मियां की जूती मियां के सिर ? इसका मतलब जानते हो ? नही जानते हो तो सुनो।

हसी, मखौल, उदासी अफसोस नाराजगी के बार-बार-बार बदलते मौसम मे तब बारीन हालदार ने रुक रुककर कहा

मरी बात समझने के लिए हरिजनों, सफाई मजदूरों या छोटे आदमियों के लिए बनवाई गई दस-पांच बड़ी बस्तियों को भूल जाओ। जैसे कुछ तान्त्रिक लोग शराब पीने के पहले मां-काली के नाम पर दो चार बूंदें जमीन पर छिडक देते हैं वैसे ही हाउसिंग की पूरी-की-पूरी

स्कीम गटकने के पहले चतुर लोग हरिजनो के नाम पर दस-बीस छोटे प्लाट निकाल देते हैं। और गटकते कौन हैं? पैसे वाले लोग जो पैसे वालो के लिए बहुत पैसे वाले मकान बनवाते हैं।

'हर बड़े शहर में नयी बस्तिया दूर-दूर तक फैली हुई हैं। यह ऐसा मनी-प्लाट है जिसकी जड पर लोगो की निगाह नही जाती, निगाह सिर्फ हरी-हरी पत्तियो पर है। इस मनी प्लाट की जड सार्वजनिक निधियो मे है और इस तरह और गहरे जाकर वह जड हमारी-तुम्हारी जेब मे पहुची हुई है।

"वैसे ये बस्तिया—जैसी कि यह रवीद्रनाथ एक्सटेंशन है—नाम से बडी भोली भाली लगती ह। नाम सुनते ही मन पवित्र हो जाता है। किसी का नाम गौतमपल्ली है, लगता है कि गौतम बुद्ध का त्याग और तपस्या यहा के जर्रे-जर्रे मे झलक रही होगी। एक जगह किसी ने सर्वोदय नगर बसाया है, जैसे वहा घर-घर मे विनोबा भावे रहते हो। किसी बस्ती का नाम रामकृष्णपुरम, किसी का नाम है तात्याटोपे नगर जो शायद इट गारे से नहीं, खून और शहादत से बनाई गई होगी। पर इन बस्तियो मे रहने वाले हैं कौन? वही अपने जाने पहचाने साहब-बीबी गुलाम, वही अफसर, वही नेता, वही व्यापारी।

"नाम तो महापुरुषो के ऊपर रख लिए पर हालत यह है कि रामकृष्णपुरम और तात्याटोपेनगर कहते हुए जबान अटकती है। आदत तो ग्रीन पाक और क्ले स्क्वायर की पडी है। तभी वहा वाले बडे सपाटे से उन्हें आर० के० पुरम् या टी० टी० नगर कहकर फुरसत पा लेते ह। अपने यहा भी तो यही हुआ। जहा हम लोग भगियो की एक शानदार कालोनी बनवाना चाहते थे वहा हमारे आवास विभाग ने बनवा डाला—अमर-शहीद पडित जटाशकर-अवस्थी-नगर। और अब अमर शहीद का इतना बडा नाम लेने में जीभ लडखडान लगी तो उसे कहने लगे ऐस्पानगर। फिर भी बस्ती बनी उसी ढर्रे पर जिसका शहीद से कोई सरोकार नहीं। दो सौ फ्लैट अपने पिट्ठुओ को किराये पर देने के लिये नगर निगम ने बनवा लिए और बाकी हजारो प्लाट फिर उन्ही साहब-बीबी-गुलामो मे बांट दिए गए।

"अब पूरी बात सुन लो। इन शहराती बस्तियों के बनने का भी एक तरीका है। पहले खेतिहरों से उनकी जमीन ली जाती है, नगर के प्रसार का कागजगोड़ा खड़ा करके उन्हें भगा दिया जाता है। फिर वह जमीन किसी निगम या परिषद या सोसाइटी के हत्थे चढ़ती है। तब उसके टुकड़े करके उसे बाटा जाता है और घूम फिर-कर सभी प्लाट साहब-बीबी गुलाम के हाथ मे आ जाते हैं। फिर बकों से या जीवन-बीमा निगम से या इधर उधर से किसी-न-किसी तरह काम बनाने के लिए कर्ज लिया जाता है। इस तरह चतुर लोग दूसरे की जमीन पर दूसरे के पैसे से अपना मकान बनवाते हैं। यही नही, वे उसे मनमाने किराये पर उठाते हैं और कोशिश रहती है कि मकान किसी सरकारी या अर्द्धसरकारी सस्था को दिया जाए ताकि किराये की वसूली मे सुभीता रहे। जिसके पसे से मकान बनवाया, कोशिश रहती है कि उसी से किराया लेकर उसका पैसा चुकता कर दें, ऊपर से कुछ बचा लें। यही है मिया की जूती और यही है मिया का सिर।

"रह गये भगी-चमार, उनके लिए एक एक कमरे वाली बैरकें बनवा दो, चाहे उनके घर म एक आदमी हो या ग्यारह! बस, इतने से आर० के० पुरम् और टी० टी० नगर का कलक धुल जाएगा।"

— 'मकान' से।